**********राधे राधे**********

क्रम.स.	विषयसूची	पृष्ठ.स.
१	श्री राधे कृपामयी कृपा करो	३
२	राधा कृपाष्टक	४
३	॥ श्री राधा कृपा कटाक्ष स्तोत्र॥	५
४	श्रीमद्भागवत-रसामृत (व्यासाचार्या साध्वी मुरलिका जी)	८
५	श्रीमद्भागवत सप्ताह महायज्ञ (व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी)	१०
६	श्रीमद्भगवद्गीता (साध्वी सुगीताजी)	१२
७	"गीता" विश्व मानव धर्म (श्री विनोद बाबाजी महाराज)	१४
८	श्रीभगवन्नाम-महिमा (साध्वी माधुरीजी)	१६
९	धाम-महिमा (साध्वी चंद्रमुखीजीजी)	१८
१०	श्रीराधासुधानिधि' (संतश्री ध्रुवदासजी भक्तमाली)	२०
११	गौ-महिमा (साध्वी पद्माक्षीजी)	२२
१२	भक्त-चरित्र (भक्तमालिनी साध्वी गौरीजी)	२४
१३	नित्य सत्संग (डॉ. रामजीलालजी शास्त्री)	२६
१४	भक्त-यशगान से भक्तापराध की निवृत्ति (संतश्री भामिनीशरणजी)	२७
१५	DHAAM NISHTHAA (Ravi mongaji,New-Delhi)	३०
१६	मान मंदिर की गतिविधियाँ	३२

श्री दाऊजी महाराज एवं रेवती मैया (दाऊजी मंदिर, बलदेव)

संतजन जब सत्संग या वार्ता करते हैं तो उनके मुख से जो वाणी निकलती है, वह उनके हृदय में विराजमान प्रभु के चरण-कमलों का स्पर्श करके आती है, वह वाणी सुनने वाले को भक्त बना देती है।

-प.पूज्यश्री बाबा महाराज

अब तौ कृपा करौ श्रीराधा |

वृन्दाविपिन बसौ श्रीस्वामिनी छाडी जगत की बाधा ||

तीन लोक गावत या वन की लीला ललित अगाधा |

"नागरिया" पै तनक ढ़रै ते होय सहज सुखसाधा ||

संरक्षक – श्री राधा मान बिहारी लाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री,

मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

**********राधेराधे**********

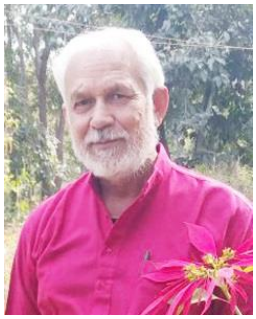

प्रकाशकीय

सन्मार्गी हो या कुमार्गी आश्रय सभी को चाहिए क्योंकि यह एक अनादि प्रक्रिया है | नवजात शिशु भी जन्म लेता है तो माँ का आश्रय खोजता है और शनैः-शनैः फिर अनेक आश्रयों का आदि हो जाता है परन्तु क्या जीवाश्रय उसके लिए उचित है अथवा अनुचित, उसे वह नहीं जानता क्योंकि जीवन-मरण की अनंत धारा में उसने वही सब कुछ सीखा है और वस्तुतः सत्याश्रय क्या है, यह तो कोई विरला ही जान पाता है | "**जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ||**" जगतातीत संत महापुरुषों का सानिध्य व उनकी कृपासन्निधि अथवा उनका सत्संग यदि मिल जाए तो फिर जीव सदा-सदा के लिए असदाश्रय से बचकर कभी भी कुमार्गगामी नहीं बनेगा और सतत् भगवद् रस की निर्झरणी में रसोन्मत्त होता रहेगा | यह संग भी संत या भगवत्कृपा से ही मिलता है, इसी को सत्संग कहते हैं | वास्तव में सत्संग ही सच्चा आश्रय है | जैसा कि कहा गया है कि रोगी का आश्रय वैद्य नहीं है अथवा बच्चे का आश्रय माता-पिता नहीं हैं | सच्चा आश्रय केवल सत्संग है | भगवच्चरित्र के अतिरिक्त अन्य वार्ताओं या कर्मों में रति, श्रवण-कथन करने वालों की बुद्धि नष्ट हो जाती है, फलतः वे तेजहीन हो जाते हैं, संस्कारहीन हो जाते हैं, उनका ऐश्वर्य, शक्ति, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य सब कुछ चला जाता है | जिसके भय से काल भी भयभीत रहता है, सारी सृष्टि का शासन उसी की इच्छा-शक्ति से चलता है, वह है परमात्मा जो षडैश्वर्य सम्पन्न है | जीव का उसके अतिरिक्त कोई अवलम्ब नहीं हो सकता | संसार में लोग मरणधर्माओं का आश्रय खोजते हैं | वाह्य जगत का वातावरण जीव को असुर बना देता है, आसुरी आचरण सिखा देता है, दंभ, दर्प, काम, क्रोध, मान, मोह, वाणी की कठोरता आदि अनेक दोष जीव में आ जाते हैं, जिनके फलस्वरूप फिर वह अनंतकाल तक नारकीय यातनाओं को भोगने के लिए विवश रहता है | अतः सरलतम साधन यही है कि निष्किंचन महापुरुषों का आश्रय गृहण करे | उनकी आज्ञा का बिना विचार किये पालन करता रहे – "**बिनहि विचार करिअ शुभ जानी |**" यही है सत्संग और सत्य की प्राप्ति | श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ऐसे ही एक निष्किंचन महापुरुष परम श्रद्धेय श्रीरमेशबाबाजी की अलौकिक वाणी को लिपिबद्ध कर एक पत्रिका **"मान मन्दिर बरसाना"** के माध्यम से सम्प्रेषित करने का प्रयास कर रहा है | आशा है सभी इसका लाभ ले पायेंगे |

राधाकांत शास्त्री

व्यवस्थापक, मान मंदिर सेवा संस्थान, बरसाना

श्री राधे कृपामयी कृपा करो

जिनके श्रीचरणकमल नखचन्द्रिका से समस्त गोपीमण्डल प्रकाशित हैं, जो सदा अपनी चिन्मयी ज्योति बिखेरती रहती हैं और समस्त ब्रज गोपियाँ जिनकी किरणें मात्र हैं, वे पूर्णानुराग रससागर की सार रसामृतमूर्ति कारुण्य-कल्लोलिनी-रासोत्सवोल्लासिनी गौरांगी श्री राधारानी कब कृपा करेंगी ?

सान्द्रप्रेमरसौघवर्षिणि नवोन्मीलम्महामाधुरी
साम्राज्यैकधुरीणकेलि विभवत्कारुण्यकल्लोलिनि ।
श्रीवृन्दावनचन्द्रचित्तहरिणी बन्धुस्फुरद्वागुर
श्रीराधे नवकुञ्जनागरि तव क्रीतास्मि दास्योत्सवैः ॥

(रा.सु.नि. २०६)

रसिकों ने श्रीजी को कृपा-करुणा की नदी कहा है, राधारानी कौन हैं ? रसिक लोग कहते हैं यह प्रेम की घटा हैं, रस की वर्षा करती हैं और उस वर्षा से उत्पन्न होने वाली नदी भी यही राधारानी हैं, यही तो प्रेम की घटा हैं, प्रेम की वर्षा करती हैं, उस मधुरिमा के साम्राज्य से उत्पन्न होने वाली कारुण्य-कल्लोलिनी श्रीराधारानी हैं, कारुण्य-कल्लोलिनी कहते हैं करुणा की नदी को, श्रीजी में इतनी करुणा है कि करुणा से इनका सारा विग्रह ही पिघल जाता है । इसलिए इन्हें "कारुण्य द्रव भामिनी"कहा गया । किशोरी जी करुणा से द्रवीभूत जलरूप हो जाती हैं; इनकी कृपा-करुणा को श्रीकृष्ण की कृपा-करुणा से कोटि गुना अधिक बताया गया । ये बात कृष्णावतार में ही नहीं रामावतार में जानकी जी के बारे में भी रसिकों ने लिखा है –

मातर्मैथिलि ! राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया,
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ।
काकं तं च विभीषण शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः,
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी

(श्रीगुणरत्नकोश)

"हे माता ! जिन दुष्ट राक्षसियों ने आपका अपराध किया था, आपको डराया, धमकाया, काटने को दौड़ीं, त्रिशूल-खड्ग आदि को दिखाया, अभी उनका अपराध गीला (ताजा) था, ऐसी उन राक्षसियों की भी आपने रक्षा की और ऐसी करुणा दिखाकर रामजी की गोष्ठी (परिकर) - चारों भाई, उनके भक्त हनुमानादि समस्त गोष्ठी को कृपा-करुणा में आपने तुच्छ कर दिया । रामजी ने तो जो उनकी शरण में आया तब उसकी रक्षा की जैसे विभीषण, जयन्त आदि परन्तु वो राक्षसियाँ तो आपकी शरण में भी नहीं आयीं, केवल आपका अपराध करने वाली ही थीं, आप ऐसी करुणामयी हैं कि उनकी भी आपने रक्षा किया । इसीलिए रामजी की भी कृपा-करुणा आपके सामने तुच्छ हो गयी ।" इसीलिए तो भक्तलोग कहते हैं 'कृपा कटाक्ष भाजनम्' कब आपके कृपा के कटाक्ष (नेत्रों की कोर) से कृपा की वर्षा होगी ? किशोरी जी के नेत्रों की कोर से वह कृपा का समुद्र बरसता रहता है, ऐसी करुणामयी श्री राधारानी जो कृपा करने में कभी अघाती नहीं अर्थात् तृप्त नहीं होती हैं –

"मोरि सुधारिहि सो सब भाँती ।
जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ॥"

भगवान् के चरणों की शरण में गये बिना किसी भी साधन से माया को नहीं जीता जा सकता, क्योंकि एक तो ये माया दुस्तर है, दूसरा हमारा साधन भी सीमित है । किन्तु यदि भगवान् की कृपा दृष्टि पड़ जाये तो निश्चित वहाँ से माया भाग जायेगी । भगवान् का स्वभाव है कि वह अपने आश्रित के दोष नहीं देखते और यदि उसमें थोड़ा-सा भी गुण होता है तो प्रभु उसी से रीझ जाते हैं । -प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज (गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

राधा कृपाष्टक

(प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज कृत)

कृपा कटाक्ष जासु की अनंत लोक-पावनी ।
कथा-प्रवाह-केलि की समस्त ताप-नाशनी ।।
सुनाम सिद्ध राधिका, अशेष सिद्धि दायिनी ।
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न ह्वै कृपा करो ।।१।।

जिनकी कृपा-कटाक्ष अनन्त लोकों को पवित्र करने वाली है, जिनके केलि-प्रवाह की कथा समस्त तापों को नष्ट करने वाली है तथा 'राध् संसिद्धौ' अपने राधा नाम से ही स्वतः सिद्ध हैं व समस्त सिद्धियों की दात्री हैं, ब्रह्मपर्यन्त को भी रस सिद्धि देने वाली हैं, वे शुभदृष्टि वाली कृपामयी प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें।

अनन्त पूर्ण चन्द्रमा लजावनी सुशोभिते ।
अनन्त चंचला निकाय मर्दनी सुगौरते ।।
अनन्त मार चाप भंजनी सुभौह भंगिके ।
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न ह्वै कृपा करो ।।२।।

पूर्णिमा के अनन्त चन्द्र-मण्डलों को लज्जित करने वाली, जो उनसे भी अधिक सुशोभित हैं, जिनकी गौरता अनन्त दामिनियों के समूह को भी परास्त कर देती है, जिनकी भ्रू-मण्डलों की भंगिमा अनन्त काम-कोदण्डों का भंजन करने वाली है । वे शुभदृष्टि वाली कृपामयी प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें।

सुदिव्य प्रेम साररूप विग्रहे प्रमोदिनी ।
तरंगिणी सुरंगिणी निकुंज-मंच राजिनी ।।
स्वकांत क्रोडशायिनी विलास-मध्य हासिनी ।
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न ह्वै कृपा करो ।।३।।

'देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ।'

सर्वथा अमानवी देवी! जो महाभाव आदि साररूप दिव्य प्रेमके भी सार विग्रह वाली सदा प्रमोद रूपिणी रंगोत्सवों की तरंगों से युक्त निकुंज-पर्यंक पर विराजने वाली हैं, अपने कान्त की गोद में शयन करने वाली विलास-मध्य हास्ययुक्त हो जाती हैं, वे शुभदृष्टि वाली कृपामयी प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें

नवीन प्रेम माधुरी प्रपूरिते किशोरिके ।
नवीन भाव भाविते नवीन-दिव्य गोरिके ।।
नवीन नागरेन्द्र-गोपमौलि-चित्त-चोरिके ।
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न ह्वै कृपा करो ।।४।।

जो नवनवायमान प्रेम की माधुरी से भरी हुई नित्य किशोरी हैं, सदा ही अभिनवभावोंसे युक्त होकर दिव्य-नूतन-नायिका ही बनी रहती हैं । इसीसे नित्य-नवीन-नागर-शेखर-गोप-चूडामणि श्रीकृष्ण के चित्तको चुराने वाली हैं, वे शुभदृष्टि वाली कृपामयी प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें।

सदा उरोज-युग्म पै सुकांत मूर्ति धारिणी ।
अनंग रंग वर्षिणी प्रहर्षिणी गयन्दिनी ।
रसेश्वरी ब्रजेश्वरी प्रपन्न शोक शोषिणी ।
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न ह्वै कृपा करो ।।५।।

जो सदा विहार कालमें अपने युगल-वक्षजों में प्रतिबिम्बित सुन्दर वल्लभ श्रीकृष्ण-विग्रह को धारण करके अनंगोत्सवों की वर्षा करती हुई प्रहर्षित होकर गजगामिनी चलती हैं । जो रस की ईश्वरी हैं, ब्रज की ईश्वरी हैं, शरणागत के शोक का शोषण करने वाली हैं, वे शुभदृष्टि वाली कृपामयी प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें।

भ्रमत्सु-भृंगसंपुटे पदारबिन्दनूपुरे ।
नितम्ब बिम्ब किंकिणी मराल शब्द-शब्दिते ।
खणत्खणत्सुहस्त-पद्म-चूरिके वरप्रदे ।
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न ह्वै कृपा करो ।।६।।

जिनके श्रीचरणकमलों में शब्दायमान नूपुर, कमल-कोष में उड़ते हुए भ्रमर-पंक्ति के समान नाद कर रहे हैं, जिनके श्रोणि-मण्डल में किंकिणी समूह राजहंसोंके क्वणन के समान कलरव करता है, जिनके सुन्दर कर-

कमलों में खनखनाती हुई चूड़ियाँ हैं, वे वर देने वाली एवं शुभदृष्टि वाली कृपामयी प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें।

मिलिन्द नंदलाल की प्रफुल्ल हेम-पद्मिनी।
चकोर नंदसूनु की हिमांशु विम्ब रूपिणी॥
प्रवीन मीन श्याम के विहार की तडागिनी,
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न ह्वै कृपा करो॥७॥

नायक शिरोमणि नन्दलाल भ्रमरके लिए जो खिली हुई स्वर्णकमलिनी हैं, नन्द-नन्दन चकोरके लिए जो चन्द्र-बिम्ब रूप वाली हैं, अति प्रवीण श्यामसुन्दर मीन के लिए जो विहार हेतु सरोवर रूपा हैं। वे शुभदृष्टि वाली कृपामयी प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें।

अलिन्द भानुमंदिरे सखीन संग खेलिनी,
कलिंद नंदिनी निकुंजमंदिरे सुकेलिनी।
निकुंज गह्वरे मिलत्सुनाह वेग झेलिनी,
शुभेक्षणे कृपामयी प्रसन्न पाद सिर धरो॥८॥

जो वृषभानु-भवन की देहरीपर सखियों के संग खेला करती हैं। जो यमुना-तट निकुंज-भवनमें केलि-परायणा हैं जो नित्य-विहार-स्थल गहवरनिकुंजमें मिलन को प्राप्त होने वाले सुन्दर वल्लभ के वेग की आधार रूपा हैं, वे कृपामयी प्रसन्न होकर अपने श्रीचरण हमारे मस्तक पर स्थापित करें।

.....

॥ श्री राधा कृपा कटाक्ष स्तोत्र॥

(भगवान् शिव उवाच)

मुनीन्द्रवृन्दवन्दिते त्रिलोकशोकहारिणी,
प्रसन्नवक्त्रपंकजे निकंजभूविलासिनी।
व्रजेन्द्रभानुनन्दिनी व्रजेन्द्र सूनुसंगते,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष-भाजनम्॥ (१)

भावार्थ : समस्त मुनिगण आपके चरणों की वंदना करते हैं, आप तीनों लोकों का शोक दूर करने वाली हैं, आप प्रसन्नचित्त प्रफुल्लित मुख कमल वाली हैं, आप धरा पर निकुंज में विलास करने वाली हैं। आप राजा वृषभानु की राजकुमारी हैं, आप ब्रजराज नन्द किशोर श्री कृष्ण की चिरसंगिनी हैं, हे श्रीराधिके! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (१)

अशोकवृक्षवल्लरी वितानमण्डपस्थिते,
प्रवालज्वालपल्लव प्रभारूणाङ्घ्रिकोमले।
वराभयस्फुरत्करे प्रभूतसम्पदालये,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष-भाजनम्॥ (२)

भावार्थ : आप अशोक की वृक्ष-लताओं से बने हुए मंदिर में विराजमान हैं, आप सूर्य की प्रचंड अग्नि की लाल ज्वालाओं के समान कोमल चरणों वाली हैं, आप भक्तों को अभीष्ट वरदान, अभयदान देने के लिए सदैव उत्सुक रहने वाली हैं। आप के हाथ सुन्दर कमल के समान हैं, आप अपार ऐश्वर्य की भंडार स्वामिनी हैं, हे सर्वेश्वरी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ?

अनंगरंगमंगल प्रसंगभंगुरभ्रुवां,
सुविभ्रमं ससम्भ्रमं दृगन्तबाणपातनैः।
निरन्तरं वशीकृत प्रतीतनन्दनन्दने,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष भाजनम्॥ (३)

भावार्थ : प्रेम क्रीड़ा के रंगमंच पर मंगलमय प्रसंग में आप अपनी बाँकी भृकुटी से आश्चर्य उत्पन्न करते हुए सहज कटाक्ष रूपी वाणों की वर्षा से श्री नन्दकिशोर को निरंतर अपने बस में किये रहती हैं, हे वृन्दावनेश्वरी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (३)

तड़ित्सुवर्णचम्पक प्रदीप्तगौरविग्रहे,
मुखप्रभापरास्त-कोटिशारदेन्दुमण्डले।
विचित्रचित्र-संचरच्चकोरशावलोचने,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष भाजनम्॥ (४)

भावार्थ : आप बिजली के सदृश, स्वर्ण तथा चम्पा के पुष्प के समान सुनहरी आभा वाली हैं, आप दीपक के समान गोरे अंगों वाली हैं, आप अपने मुखारविंद की चाँदनी से शरद पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा को लजाने वाली हैं। आपके नेत्र पल-पल में विचित्र चित्रों की छटा दिखाने वाले चंचल चकोर शिशु के समान हैं, हे जगज्जननी! क्या कभी मुझे अपने कृपा-कटाक्ष का अधिकारी बनाओगी ? (४)

मदोन्मदातियौवने प्रमोद मानमण्डिते,
प्रियानुरागरंजिते कलाविलासपण्डिते ।
अनन्यधन्यकुंजराज कामकेलिकोविदे
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष-भाजनम् ॥ (५)

भावार्थ : आप अपने चिर-यौवन के आनन्द में मग्न रहने वाली हैं, आनंद से पूरित मान ही आपका सर्वोत्तम आभूषण है, आप अपने प्रियतम के अनुराग में रंगी हुई विलासपूर्ण कला पारंगत हैं। आप अपने अनन्य भक्त गोपिकाओं से धन्य हुए निकुंज-राज के प्रेम क्रीड़ा की विधा में भी प्रवीण हैं, हे निकुँजेश्वरी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (५)

अशेषहावभाव धीरहीर हार भूषिते,
प्रभूतशातकुम्भकुम्भ कुम्भिकुम्भसुस्तनी ।
प्रशस्तमंदहास्यचूर्णपूर्णसौख्यसागरे,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष भाजनम् ॥ (६)

भावार्थ : आप संपूर्ण हाव-भाव रूपी श्रृंगारों से परिपूर्ण हैं, आप धीरज रूपी हीरों के हारों से विभूषित हैं, आप शुद्ध स्वर्ण के कलशों के समान अंगो वाली है, आपके पयोंधर स्वर्ण कलशों के समान मनोहर हैं। आपकी मंद-मंद मधुर मुस्कान सागर के समान आनन्द प्रदान करने वाली है, हे कृष्णप्रिया! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (६)

मृणालबालवल्लरी तरंगरंगदोर्लते,
लताग्रलास्यलोलनील लोचनावलोकने ।
ललल्लुलन्मिलन्मनोज्ञ मुग्ध मोहनाश्रये,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष भाजनम् ॥ (७)

भावार्थ : जल की लहरों से कम्पित हुए नूतन कमल-नाल के समान आपकी सुकोमल भुजाएँ हैं, आपके नीले चंचल नेत्र पवन के झोंकों से नाचते हुए लता के अग्र-भाग के समान अवलोकन करने वाले हैं। सभी के मन को ललचाने वाले, लुभाने वाले मोहन भी आप पर मुग्ध होकर आपके मिलन के लिये आतुर रहते हैं ऐसे मनमोहन को आप आश्रय देने वाली हैं, हे वृषभानुनन्दनी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (७)

सुवर्णमालिकांचिते त्रिरेखकम्बुकण्ठगे,
त्रिसुत्रमंगलीगुण त्रिरत्नदीप्तिदीधिति ।
सलोलनीलकुन्तले प्रसूनगुच्छगुम्फिते,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष भाजनम् ॥ (८)

भावार्थ : आप स्वर्ण की मालाओं से विभूषित है, आप तीन रेखाओं युक्त शंख के समान सुन्दर कण्ठ वाली हैं, आपने अपने कण्ठ में प्रकृति के तीनों गुणों का मंगलसूत्र धारण किया हुआ है, इन तीनों रत्नों से युक्त मंगलसूत्र समस्त संसार को प्रकाशमान कर रहा है। आपके काले घुंघराले केश दिव्य पुष्पों के गुच्छों से अलंकृत हैं, हे कीरतिनन्दनी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (८)

नितम्बबिम्बलम्बमान पुष्पमेखलागुण,
प्रशस्तरत्नकिंकिणी कलापमध्यमंजुले ।
करीन्द्रशुण्डदण्डिका वरोहसोभगोरुके,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष भाजनम् ॥ (९)

भावार्थ : आपका उर भाग में फूलों की मालाओं से शोभायमान हैं, आपका मध्य भाग रत्नों से जड़ित स्वर्ण आभूषणों से सुशोभित है। आपकी जंघायें हाथी की सूंड़ के समान अत्यन्त सुन्दर हैं, हे ब्रजनन्दनी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (९)

अनेकमन्त्रनादमंजु-नूपुरारवस्खलत्,
समाजराजहंसवंश निक्वणातिगौरवे ।
विलोलहेमवल्लरी विडम्बिचारुचंक्रमे,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष-भाजनम् ॥ (१०)

भावार्थ : आपके चरणों में स्वर्ण मण्डित नूपुर की सुमधुर ध्वनि अनेकों वेद मंत्रो के समान गुंजायमान करने वाले हैं, जैसे मनोहर राजहसों की ध्वनि गूँजायमान हो रही है। आपके अंगों की छवि चलते हुए ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे स्वर्णलता लहरा रही है, हे जगदीश्वरी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (१०)

अनन्तकोटिविष्णुलोक नम्रपद्मजार्चिते,
हिमाद्रिजा पुलोमजा-विरंचिजावरप्रदे।
अपारसिद्धिवृद्धिदिग्ध -सत्पदांगुलीनखे,
कदा करिष्यसीह मां कृपा-कटाक्ष भाजनम् ॥ (११)

भावार्थ : अनंत कोटि बैकुंठो की स्वामिनी श्रीलक्ष्मी जी आपकी पूजा करती हैं, श्रीपार्वती जी, इन्द्राणी जी और सरस्वती जी ने भी आपकी चरण वन्दना कर वरदान पाया है। आपके चरण-कमलों की एक उंगली के नख का ध्यान करने मात्र से अपार सिद्धि की प्राप्ति होती है, हे करूणामयी! आप मुझे कब अपनी कृपा दृष्टि से कृतार्थ करोगी ? (११)

मखेश्वरी क्रियेश्वरी स्वधेश्वरी सुरेश्वरी,
त्रिवेदभारतीयश्वरी प्रमाणशासनेश्वरी।
रमेश्वरी क्षमेश्वरी प्रमोदकाननेश्वरी,
ब्रजेश्वरी ब्रजाधिपे श्रीराधिके नमोस्तुते ॥ (१२)

भावार्थ : आप सभी प्रकार के यज्ञों की स्वामिनी हैं, आप संपूर्ण क्रियाओं की स्वामिनी हैं, आप स्वधा देवी की स्वामिनी हैं, आप सब देवताओं की स्वामिनी हैं, आप तीनों वेदों की स्वामिनी है, आप संपूर्ण जगत पर शासन करने वाली हैं। आप रमा देवी की स्वामिनी हैं, आप क्षमा देवी की स्वामिनी हैं, आप आमोद-प्रमोद की स्वामिनी हैं, हे ब्रजेश्वरी! हे ब्रज की अधीष्ठात्री देवी श्रीराधिके! आपको मेरा बारंबार नमन है। (१२)

इतीदमद्भुतस्तवं निशम्य भानुनंदिनी,
करोतु संततं जनं कृपाकटाक्ष भाजनम्।
भवेत्तदैव संचित-त्रिरूपकर्मनाशनं,
लभेत्तदाब्रजेन्द्रसूनु मण्डलप्रवेशनम् ॥ (१३)

भावार्थ : हे वृषभानु नंदिनी! मेरी इस निर्मल स्तुति को सुनकर सदैव के लिए मुझ दास को अपनी दया दृष्टि से कृतार्थ करने की कृपा करो। केवल आपकी दया से ही मेरे प्रारब्ध कर्मों, संचित कर्मों और क्रियामाण कर्मों का नाश हो सकेगा, आपकी कृपा से ही भगवान श्रीकृष्ण के नित्य दिव्यधाम की लीलाओं में सदा के लिए प्रवेश हो जाएगा।(१३)

(इति उर्ध्वाम्नायतंत्रे शिवगौरीसंवादे
श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तवराज: सम्पूर्ण: ।)

.....

तुम पापी हो, पुण्यात्मा हो, भले हो, बुरे हो, ये सब मत सोचो; ऐसा सोचना तुम्हें दुर्बल बना देगा। केवल प्रभु के चरणों का ध्यान करो, उनके चरणों के आश्रय से अनन्त पाप नष्ट हो जाते हैं। हमें सिर्फ इतना सोचना है कि हम उनके चरणों में कैसे जायें? महत्व भले या बुरे का नहीं है अपितु इस बात का है कि हम जैसे भी हैं प्रभु के हैं।

-प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज (गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

श्रीमद्भागवत-रसामृत

(भागवत-श्रवण ही परम श्रेयस्कर)

व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी
(मानमन्दिरवासिनी,गह्वरवन, बरसाना) द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवत-कथा'

श्रीसूतजी महाराज ने शौनकादि ऋषियों को श्रीमद्भागवत की महिमा सुनाई और बोले कि यह कथा ऐसी दुर्लभ है जो देवताओं को भी नहीं मिली –

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्यैवं तदा देवाञ्जहास ह ॥

(भागवत माहात्म्य १/१६)

जिस समय देवतागण पहुँचे हैं, उस समय वहाँ शुकदेव जी महाराज परीक्षित जी को कथा सुनाने के लिए उद्यत थे। देवताओं ने वहाँ जाकर कहा – महाराज ! ये हमारा अमृत ले लें और कथामृत दे दें तो शुकदेव जी ने उन देवताओं की हँसी उड़ा दी और बोले कि तुमने कथा को भी व्यापार बना दिया। कथा में भी लेने देने की, सौदा की वृत्ति तुम ले आये। देखो, जो साधन हमारे लिए कल्याणकारी है, कल्याण कर सकता है, उस साधन का उपयोग, उस साधन को यदि हम जीविका बना दें, अपनी प्राणवृत्ति बना दें, एक व्यापार बना दें, एक सौदा की वृत्ति बना दें तो वह साधन कभी हमारा कल्याण नहीं कर सकता है। भागवत कथन श्रवण से कल्याण होता है लेकिन भागवत को यदि व्यापार बना दिया गया, इसमें भी लेन-देन की सौदा की वृत्ति आ गयी तो ये भागवत-श्रवण कभी लाभ नहीं करेगा, कभी इससे कल्याण नहीं होगा चाहे कितनी भी बार सुन लिया जाए, कितनी भी बार इसको कह लिया जाए क्योंकि श्रीबिहारिनदेवजी ने कहा –

नाम निरादर मत करो दिन नामहि दुलराय।
बिहारिन दास ममता बिना नामहि बेचे खाय ॥

हम लोग कथा को व्यापार बना देते हैं, क्यों? क्योंकि कथा से हमारा प्रेम नहीं है। कथा को हमलोग अपनी जीविका का साधन बना देते हैं। कथा को हम अपनी जीविका बना देते हैं, कथा कहेंगे तब जब पैसा मिलेगा, क्योंकि वहाँ कथा नहीं हो रही, वहाँ तो केवल एक द्रव्योपार्जन हो रहा है। यदि कथा को कल्याण की ही दृष्टि से सुना जाय, हम कथा तो सुनें लेकिन हमारा लक्ष्य हो कि इस कथा श्रवण से हमारे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य पुष्ट हों, हमें भगवत् प्रियता की प्राप्ति हो, हमें भगवान् मिल जाएँ, जब इस लक्ष्य से कथा सुनी जायेगी तभी यह कथा कल्याण करेगी और यदि कथा के पीछे यह लक्ष्य है कि कथा से द्रव्य (धन) मिल जाये तो यह कल्पतरु है, धन आदि मिल जाएगा लेकिन फिर धन आदि ही मिलेगा, कल्याण नहीं होगा फिर भगवान् नहीं मिलेंगे। इसलिए स्कन्दपुराणोक्त भागवत-माहात्म्य में पहले ही दो शर्तें रख दीं गयीं कि वक्ता और श्रोता को कृष्णार्थी होकर के ही कथा कहनी चाहिए और कृष्णार्थी हो करके कथा सुननी भी चाहिए। यदि धन की थोड़ी-सी भी इच्छा आ गयी तो फिर भगवान् दूर चले जायेंगे। हम लोग ममता के साथ कथा सुनें, हम लोग प्रेम के साथ कथा सुनें, हम लोग भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति का लक्ष्य लेकर कथा सुनें, तभी कथा श्रवण का सम्यक् लाभ हमको मिल पायेगा। देवताओं को कथा का श्रवण नहीं कराया शुकदेवजी महाराज ने, बोले कि ये अनधिकारी हैं, इन्हें कथा सुनने का अधिकार नहीं है क्योंकि ये तो यहाँ व्यापार करने के लिए आये हैं, इसलिए उनको कथा नहीं सुनाई। कथा के अधिकारी

तो परीक्षित जी महाराज थे, सारी राज्यलक्ष्मी छोड़कर आ गये, सात दिन तक कथा सुनी और इधर उधर राज्यलक्ष्मी में मन नहीं गया ।वह अधिकारी थे, उनमे शुकदेव जी ने पात्रता देखी तब कथा सुनाई और जब परीक्षित जी ने कथा सुनी तो सात दिन में उन्हें भगवद् धाम की प्राप्ति हो गयी। ब्रह्मा जी को महान आश्चर्य हुआ – अरे, परीक्षित की अकाल मृत्यु हुई, सर्प दंशन से यह मरा और इसको नारकीय गति नहीं मिली, उल्टा भगवद्धाम में चला गया, यह क्या बात है? उन्होंने सब साधनों को तौला, एक ओर सब साधन तथा दूसरी ओर भागवतजी परन्तु भागवत जी महामहिमामय होने के कारण सबसे भारी हो गयीं, अन्य सब साधन तौल में हल्के पड़ गये।

इसलिए ब्रह्मा जी ने निर्णय दे दिया कि कलिकाल में जीव के कल्याण के लिए भागवत जी से ऊँचा और दूसरा कोई साधन नहीं है।

अतः कथा कथन और श्रवण की परम्परा तो तभी से चली आ रही है, जब शुकदेव जी महाराज ने परीक्षित जी को कथा सुनाई लेकिन जो सप्ताह यज्ञ की विधि है कि सात दिन में कथा सुननी चाहिए, यह विधि सनकादिक मुनीश्वरों ने देवर्षि नारद जी से कही। शौनक जी ने पूछा - नारद जी को तो श्राप लगा है कि सात दिन क्या, सात घन्टे वह एक स्थान पर बैठ नहीं सकते क्योंकि वह दक्ष जी से शापित हैं तो फिर सात दिन बैठ के नारद जी महाराज ने कथा कैसे सुनी ? सूतजी ने उत्तर दिया –

सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी।
सहज बिमल मन लागि समाधी ॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड - १२५)

भगवत्स्मरण में कोई शाप बाधा उत्पन्न नहीं कर सकता, वहाँ काल का प्रवेश नहीं है तो शाप का प्रवेश कहाँ से हो जाएगा ? क्रमशः

.....

आसक्ति की रस्सी दिखाई नहीं देती है परन्तु वह इतनी लम्बी होती है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। आप अमेरिका में बैठे हैं और आसक्ति की रस्सी वहीं से बाँधकर आपको ले आयेगी। साधक को अपनी वृत्तियों को बचाकर रखना चाहिए। यदि वृत्तियाँ बँट गयीं तो साधक लुट जायेगा। वृत्तियों के बँटने के बाद कुछ भी जप, तप व पाठ आदि करते रहो कुछ नहीं मिलने वाला। अपनी वृत्तियों को सब जगह से हटाकर एक श्रीकृष्ण में लगा दो। जब तक कहीं भी आसक्ति है, चाहे थोड़ी ही क्यों न हो, तब तक वहाँ श्रीकृष्ण प्रेम नहीं होता है।

-प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज (गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

श्रीमद्भागवत सप्ताह महायज्ञ

(सरस साधन-साध्य 'श्रीमद्भागवत')

श्रीबाबा महाराज द्वारा कथित श्रीमद्भागवत-कथा (२२/२/१९८५)

(संकलनकर्त्री / लेखिका – व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी, मानमंदिर, बरसाना)

या प्रकार से जब नारद जी ने भक्ति महारानी से भक्ति की महिमा वर्णन कियो तो वह बड़ी प्रसन्न भयीं ।और फिर नारदजी से बोलीं कि हमारी इन दोनों संतानों को जगाने की चेष्टा करो, ये सो रहे हैं। सूत जी बोले - भक्ति देवी के वचन को सुनकर के नारद जी उन दोनों बूढ़ों (ज्ञान और वैराग्य) के कानन में मुंह को लगाकर के जैसे कोई किसी को जोर से बुलावै - अरे फलाने रे, उठियो रे; वैसे ही नारद जी चिल्लाने लगे - अरे भैया ज्ञान रे, ओ ज्ञान, अरे वैराग्य रे ! पर उनके तो खर्राटे चल रहे, मूर्छा-सी आ रही थी । "ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ।" नारदजी ने वेद मंत्र पढ़े, गीता पाठ सुनायो, बहुत प्रयत्न कियो किन्तु ज्ञान-वैराग्य भूख से दुबले होय रहे और भारी निद्रा में अचेत पड़े थे, उन्हें कछु नहीं भयो तब नारद जी को बहुत चिंता भयी, वह विचार करने लगे - कहा करें भाई, जितनी हमारी शक्ति थी सब हमने लगाय लियो । वाई समय आकाश वाणी भयी - "ऋषेः मा खिद्यताम्" - हे ऋषि ! तुम उदासी को मत प्राप्त हो और देखो तुम्हारो उद्यम सफल होयेगो, साधु पुरुषन के पास जाओ और वे याको निदान बताएँगे । नारद जी सुनकर के विचार करबे लग गये कि कार्य तो होई जायगो लेकिन आकाशवाणी ने बात सब ढकी मुंदी सी रखी, साफ-साफ नहीं बतायो कि कौन से साधु संत के पास जायें,मैं पहले ही बहुत प्रयत्न कर चुको हूँ, चलो अच्छा । नारद जी निकले अपनी लुटिया डोर ले करके ढूंढवे, हर तीर्थ में जाएँ और वहां जितने भी साधु-संत-महात्मा-मुनि मिलें, सबनसें पूछें, अब या बात को सुनकर के कोई संत तो मौन (चुप) रहे, कोई सन्त कहने लगे – भाई, ये बड़ो असाध्य काम है, ये है नहीं सकै, जब वेद-वेदांत और गीतापाठ से ज्ञान-वैराग्य नहीं उठे तो अन्य साधनन से कैसे उठेंगे और कछु महात्मा इकट्ठा होकरके आपस में बोले कि जब नारदजी ही नहीं जानें तो हम तुम कहा जानें । मोरा तो कुहक-कुहक के मरे जायें फिर छोटो सो पपैया बेचारो कितनो चिल्लावैगो । इसलिए बड़े बड़े ऋषि-महर्षि सब चुप्पी लगा गए किन्तु नारद जी अपना चलते रहे, पूछते रहे, चलते रहे । अंत में नारदजी वहाँ पहुँचे जहाँ सनकादि चारों भैया बैठे सत्संग कर रहे थे । उन्हें देखते ही नारद जी बोले – ओहो ! ये तो बड़े सौभाग्य की बात है कि ये हमें प्राप्त भये, पांच वर्ष के हैं, नंगे रहें चारों भैया, पांच वर्ष के बालक हैं परन्तु बालक नहीं हैं, पुरखान के पुरखा हैं, सबनते पहले यही पैदा भये । ये कहा करें, बस "हरिकीर्तनतत्पराः" हमजैसे लोग जो नासमझ प्राणी हैं, वे कीर्तन को छोटी-मोटी चीज समझें । अरे !!! सनकादिक भी यही काम कर रहे हैं जाको हम लोग हुल्लड़ कहैं, समझें नहीं । सनकादिक चारों भइया सदा कृष्ण कीर्तन करते हैं और वा कीर्तन के प्रभाव से ही सबसे ऊँचे बने हुये हैं । इसलिए सब लोग कीर्तन बोलो

जय श्री राधे, जय नन्दनन्दन ।
जय श्री राधे, जय नन्दनन्दन ।
जय जय राधे नैनन अंजन ।
जय जय श्यामा नैनन अंजन ।
जय श्री श्यामा, जय नन्दनन्दन ।
जय बरसानों जय गहवरवन ।
जय वृन्दावन जय गोवर्धन ।

या प्रकार से सनकादिक कीर्तन कर रहें हैं, वे भी गहवरवन की लीला गावें, बरसाने की जय-जय बोलें हैं ।

ये बात असत्य नहीं है। इस प्रकार या रस में सनकादिक मस्त हैं, चारों भैया कृष्ण-कीर्तन में लगे भये हैं, नारद जी उन्हें देखकर बोले - आहा "अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह"। नारद जी नाचवे लग गए और बोले – आहा हा हा, वाह री मेरी तकदीर, वाह रे मेरो भाग्य, बड़ो भाग्य होवे जब संत को दर्शन मिले, बलिहारी है मेरे इस भाग्य की कि आप लोगन के दर्शन भये ।देखो महाराज ! हमपे ऐसी कृपा करो कि भक्ति ज्ञान वैराग्य को सुख होय, या प्रकार से नारदजी ने अपनी सब समस्या सनकादिक मुनियों को बताई तो चारों भैया बोले - अच्छा देवर्षि, आप चिंता नहीं करो ।(साधुजन तो बड़ो शीतल बोले हैं, कोई कितनोई दुःखी होकर उनके पास जाय, वे एकदम ठंडो कर दें। कोई तुम्हारे पास आवै तो सबसे पहले ऐसी वाणी बोल दो कि वो जो दौड़ के आयो, वाको श्रम चलो जाय। ये साधु को लक्षण है।) इसलिए सनकादिक नारदजी से बोले - आप अपने मन में हर्ष लाओ और उपाय बड़ो सरल है, देखो, नारदजी ! आप तो बड़े विरक्तों के शिरोमणि हो, अरे ! तुम तो कृष्ण दासों के अगुआ हो, साधारण नहीं हो, योग के तुम सूर्य हो, नारदजी स्वयं को पहचानो कि तुम कौन हो और तुम्हें जो इतनी उदासी है तो वह ठीक है। और लोग तो नारदजी से पूछते थे कि महाराज, तुम क्यों उदास हो लेकिन सनकादिक कह रहे हैं कि तुम्हें ठीक उदासी है क्योंकि पर दुःख में दुःखी साधु ही हो सकें, अपने दुःख में तो सब दुनिया दुःखी होय पर साधु वही है जो पराये दुःख में दुःखी होय। सनकादिक नारदजी से बोले - बहुत से यज्ञ हैं जैसे जपयज्ञ, तपयज्ञ .....आदि किन्तु सबसे बड़ो यज्ञ है श्रीमद्भागवत श्रवण, केवल श्रीमद्भागवत-श्रवण से ही ज्ञान, वैराग्य के कष्ट दूर होंगे।

क्रमशः

.....

बादल समुद्र से जल को लेकर सबके कल्याण के लिए वर्षा करते हैं। समुद्र स्वयं नहीं आता, सभी के पास उसका जल बादलों के द्वारा ही पहुँचता है। बादल सबको जीवन-दान देता है। बादल सबसे बड़ा परोपकारी संत है। इसी तरह भगवान् स्वयं समुद्र हैं और संत बादल हैं। यदि संत नहीं हों तो संसार को भगवत्तत्व का लाभ नहीं मिल सकता। जैसे समुद्र की उपयोगिता बादलों पर निर्भर करती है, वैसे ही भगवान् की संतों पर। जन्म तो उसी का सफल है जो स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों का परोपकार करता है। संतो का तन, मन, बुद्धि, वाणी सब कुछ दूसरों के लिए होती है।

-प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज (गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

श्रीमद्भगवद्गीता

(भारतीय संस्कृति का स्वरूप)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (१४/१/२०१२) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी सुगीताजी, मानमंदिर, बरसाना)

गुरूनहत्वा हि महानुभावा-
ञ्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥५॥

अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि मैं गुरुजनों का वध कैसे करूँ, कैसे गुरुजन ? जो महानुभाव हैं, साधारण गुरु नहीं हैं, महापुरुष हैं। 'महानुभावान् गुरून्' ये विशेषण हैं, जिनका एक ही भाव है। इनको अहत्वा – बिना मारे , भैक्ष्य - भिक्षा का अन्न, संसार में भोक्तुं 'खाना' ज्यादा श्रेयस्कर है, भीख माँग के खाना ज्यादा अच्छा है बड़ों को मारने की अपेक्षा क्योंकि ये जो गुरुजन हैं, ये अर्थरूप हैं, कामरूप हैं, इनको मारने का मतलब है कि अर्थ और काम सब नष्ट हो जायेंगे। इहैव – यहाँ पर, गुरुजनों को जो अर्थ, काम रूप हैं, इनको अगर मारते हैं तो जो हमारे भोग हैं, वे खून से प्रदिग्ध (भीजे हुए) माने जायेंगे और हम रुधिरप्रदिग्धान् – खून के भीगे भए (सींचे भए) भोगों को भोगेंगे, जो कि ठीक नहीं है। भारतीय संस्कृति में बड़ों का सम्मान इतना अधिक है कि महाभारत में एक कथा है (महाभारत, युद्धकाण्ड में) कि एकबार युद्ध में कर्ण ने युधिष्ठिर को बहुत घायल कर दिया था। जब अर्जुन ने सुना कि बड़े भैया ज्यादा घायल हो गए हैं तो वह उन्हें देखने के लिए लड़ाई के मैदान से चले गए क्योंकि युधिष्ठिर धर्मराज हैं, बड़ेभाई हैं। जब अर्जुन उनके पास पहुँचे तो युधिष्ठिर ने पूछा – "क्या तुम कर्ण को मार आये, प्रतिज्ञा पूरी करके आये हो युद्धभूमि से ?" तो अर्जुन ने कहा –"नहीं, मैं आपको देखने आया हूँ।" तो युधिष्ठिर खीज गए और उन्होंने कहा कि धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीव को, तुम बिना प्रतिज्ञा पूरी करे आये हो तो इतना सुनते ही अर्जुन ने तलवार निकालना शुरू किया, कृष्ण पास में खड़े थे, कृष्ण ने स्थिति को समझ लिया और बोले – "तलवार पर हाथ क्यों दे रहे हो ? अर्जुन ! ये क्या कर रहे हो ?" अर्जुन बोले – "मेरी प्रतिज्ञा है कि जो हमारे गाण्डीव की बुराई करेगा, मैं उसका सिर काट लूँगा।" तो भगवान् ने कहा कि अरे ! युधिष्ठिर महापुरुष हैं, इनकी हत्या करोगे ? अर्जुन बोले – "यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करूँगा तो आग में जल जाऊँगा, यह मेरा नियम है।" तब भगवान् ने कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा यह है कि जो गाण्डीव की बुराई करेगा, तुम उसका सिर काट दोगे। अगर तुम युधिष्ठिर का सिर काटते हो तो महापुरुष को मारने का महान भक्तापराध तुम्हें लगेगा जो कभी नष्ट नहीं होगा और नहीं सिर काटते हो तो तुम अपने आप को जला दोगे, यह भी ठीक नहीं है। इसलिए तुम इनको 'तू' कह दो। बड़ों को 'तू' कहने से ही उनको मारने के समान अपमान हो जाता है, इस प्रकार तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी मान ली जाएगी। ये एक बड़ी विचित्र घटना थी। इससे पता पड़ता है कि हमारी संस्कृति कितनी पूज्य है ? भगवान् के निर्देशानुसार अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा – "अरे ! तू इस तरह से बोलता है कि बिना कर्ण को मारे मैं आ गया।" जब इतना कहा तो युधिष्ठिर घायल थे, वह उठके चलने लग गये। तो भगवान् ने कहा – "युधिष्ठिर कहाँ जा रहे हो ?" युधिष्ठिर बोले – "अब मै राजपाट छोड़ दूँगा और भिक्षुक बन जाऊँगा, क्या फायदा जब छोटा भाई ही मुझसे तू कहता है, ऐसे जीवन से क्या लाभ ? क्षत्रिय को ऐसा जीवन नहीं बिताना चाहिए, यह क्षात्रधर्म के विरुद्ध है, अतः मैं अब यहाँ से चला

जाऊँगा, साधु बन जाऊँगा, यहाँ नहीं रहूँगा ।" भगवान् ने कहा कि तुम भी अर्जुन की तरह ऐसे नासमझ निकले, महाभारत चल रहा है, मैं तुम लोगों का हितैषी बनके आया हूँ किन्तु तुम लोग मेरे सम्मान की नहीं सोचते हो । युधिष्ठिर बोले – "मैं तो ऐसे नहीं जी सकता हूँ कि छोटा भाई मुझसे तू कहे ।" भगवान् ने कहा – "ठीक है, अर्जुन ने 'तू' क्यों कहा है, ये भी तो समझो, तुम्हारा सिर न काटना पड़े, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उसने ऐसा कहा है; ऐसा उसने मेरी आज्ञा से कहा है । इसलिए तुमको ऐसा काम नहीं करना चाहिए । मेरी आज्ञा से कहा है तो इसमें दुःख ही नहीं करना चाहिए ।" इस प्रकार भगवान् ने उन दोनों को समझा बुझाकर रोका । अर्जुन भी नहीं मरे और युधिष्ठिर भी नहीं मरे । हमारी आर्य संस्कृति में अपने से बड़ों का इतना सम्मान रखना पड़ता है, नहीं तो जीवन से कोई लाभ नहीं है । यहाँ इस घटना का इसलिए वर्णन किया गया जिससे कि समझ में आ जाय कि हमारी संस्कृति क्या है ? हमारा धर्म क्या है ? हम लोगों को कैसे अपने बड़ों से व्यवहार करना चाहिए । इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि भीख माँग के खाना अच्छा है, गुरुजनों को मारना ठीक नहीं है, विशेषकर के जो गुरुजन, महानुभाव (महापुरुष) हैं । इसलिए भीख माँग के खाना अच्छा है और उनके खून से भीगा हुआ राज्य भोगना अच्छा नहीं है । अपने से बड़ों को 'तू' भी नहीं कहना चाहिए, बोलने-चालने में भी अपमान नहीं करना चाहिए । आजकल की संतान ये सब नहीं जानती है और वह चाहे जैसा व्यवहार करती है बड़ों से, माता–पिता आदि से, धर्म का कुछ भी विचार नहीं करती है ।बड़ों के प्रति शिष्टाचार, आज्ञा पालन आदि की शिक्षा महाभारत से मिलती है । क्रमशः

.....

☀ भक्त कौन है? ☀

भक्त वही है जिसके मन में धन-संपत्ति, जमीन-जायदाद इन मायिक चीजों का कोई महत्व नहीं । जैसे राजा बलि ने अपनी धन-सम्पत्ति सब भगवान् को दे दी थी और अंत में अपना शरीर भी दे दिया था । इस कसौटी पर हम जैसे सब फैल हैं ।

भक्त कौन है? भक्त उसको कहते हैं जिसके सामने तीनों लोकों की लक्ष्मी रख दो, तीनों लोकों की सुख-सम्पत्ति रख दो, तीनों लोकों की भोग-सामग्री रख दो लेकिन वह उसकी याद भी नहीं करता कि सामने लड्डू का थाल आ गया या कौन अप्सरा खड़ी है । ये बात उसकी स्मृति में भी नहीं आती ।

-प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज (गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

"गीता" विश्व मानव धर्म

(श्रीश्री १०८ श्री विनोद बिहारीदासजी महाराज, प्रिया कुण्ड, बरसाना)

जो लोग गीता को हिन्दू-धर्म का ग्रन्थ कहते हैं। उन लोगों को वास्तव में गीता के संबंध में कोई ज्ञान नहीं है। गीता एक सम्प्रदाय विहीन विश्व मानव धर्म ग्रन्थ है। यह बात जरूर है कि हिन्दू धर्मावलम्बी लोग गीता को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करते हैं, इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि गीता एक सम्प्रदाय विशेष लोगों का ग्रन्थ है। विश्व मानव जाति के उत्थान के लिए, विश्व मानव एकता के लिए, विश्व शांति के लिए, गीता एक अपरिहार्य ग्रन्थ है।

धर्म छोड़कर एक सुंदर मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सभी वस्तुओं का एक धर्म है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिसका कोई धर्म नहीं है। वस्तु है तो वस्तु-धर्म है। पशु है, तो पशु-धर्म है। मानव है, तो मानव-धर्म है। संसार है, तो संसार-धर्म है। राष्ट्र है, तो राष्ट्र-धर्म है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन - ये चार गुण मनुष्य और पशु में बराबर हैं, लेकिन 'मानव-धर्म' पशु में नहीं है। मानव में मानव-धर्म की विशेषता है। अगर मानव-धर्म छोड़ दिया जाए तो मानव और पशु में कोई भेद नहीं रह जाएगा। अगर कहा जाए, "इस आदमी के पास विद्या तो बहुत है, लेकिन इसमें कोई मानवता नहीं है", अगर कहा जाए "इस आदमी के पास धन तो बहुत है, लेकिन इसे मानवता का बोध नहीं है।" यदि कहा जाए "यह व्यक्ति बुद्धिमान तो बहुत है, लेकिन इसे मानवता का बोध नहीं है" तो इसका अर्थ यह होता है कि धन, विद्या, बुद्धि आदि से मानवता एक अलग वस्तु है। जिसके नहीं होने से उस व्यक्ति को एक आदर्श मानव नहीं कहा जा सकता। क्या है वह मानवता ? कैसा है एक आदर्श मानव-जीवन ? इसका ही संदेश लेकर आयी है "गीता" विश्व मानव जाति के उत्थान के लिए, विश्व मानव शांति के लिए, विश्व मानव एकता और मैत्री के लिए। 'गीता' में एक शब्द के ऊपर विशेष बल दिया गया है। वह है सब जीवों पर दया, "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व भूतहिते रताः" जो सभी जीवों के हित के लिए सचेष्ट रहता है, वह मुझे प्राप्त होता है। (गीता ५/२५) में भी इस वाणी की पुनरावृत्ति है। "सर्वभूतहिते रताः" एक ही शब्द बार-बार कहा जाए तो समझना चाहिए कि यह बात बहुत जरूरी है। ऐसे ही एक शब्द की पुनरावृत्ति है - "अद्वेष्टा सर्व भूतानां" (गीता १२/१३) प्राणी मात्र से द्वेष न करना। फिर ग्यारहवे श्लोक में भी इसी शब्द की पुनरावृति है - "निर्वैरः सर्व भूतेषु यः स मामेति पाण्डव" जो किसी प्राणी से बैर नहीं करता, वह मुझे प्राप्त करता है। पूरी गीता विशेष ध्यान से अध्ययन करने से पता चलता है कि भगवान ने दो शब्दों पर विशेष बल दिया है। "किसी से बैर न करना" "सब जीवों का हित करना" यह दो आचरण छोड़कर किसी भी उपासना द्वारा भगवत्प्राप्ति होना संभव नहीं है। यह संदेश समस्त विश्व मानव जाति के लिए है, न कि कोई जाति विशेष के लिए।

"गीता" में जिस योग के विषय में बताते हैं - (योग माने मिलन) जीवात्मा परमात्मा से मिलन जिस कर्म के द्वारा होता है, उसे योग कहा जाता है। कर्म के द्वारा योग या मिलन - कर्मयोग, ज्ञान के द्वारा योग - ज्ञान योग, भक्ति के द्वारा योग - भक्तियोग; इन समस्त योग के अन्दर गीता में भगवान् एक योगी (जो योग युक्त है) को सर्वश्रेष्ठ योगी का आसन प्रदान किये हैं।

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।"

(गीता ६/३२)

"जो व्यक्ति जीव का सुख-दुःख अपना ही सुख-दुःख समझता है। उस योगी को मैं सर्वश्रेष्ठ योगी मानता हूँ। क्या अद्भुत है विश्वमानव-प्रेम !!! विश्वमानव एकता, मैत्री सहानुभूति, विश्वशान्ति के लिए एक बेनजीर मिसाल लेकर के आयी है – गीता !!"

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः सम दुःखसुखः क्षमी ।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

(गीता १२/१३,१४)

जो किसी भी प्राणी से द्वेष नही करता (यह शब्द सर्वव्यापक, यानि भगवान् की सृष्टि में जो भी प्राणी है), सबके लिए कहा गया है। समस्त प्राणियों से मित्र भाव, सब जीवों के प्रति करुणा (अर्थात् हर जीव के दुःख को देखकर उस दुःख को दूर करने की हार्दिक इच्छा) निर्मम - इस संसार में कोई भी वस्तु को मेरा नहीं समझना, 'निरहंकार' अर्थात् घमंड नहीं करना ।सुख और दुःख को सम भाव करना। हर अवस्था में संतोष धारण करना। क्षमी अर्थात् अज्ञानी का अपराध क्षमा कर देना। संयतचित्त, दृढ़ निश्चय अर्थात् ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखना। जिसकी मन, बुद्धि हममें समर्पित है, ये सब भक्त मुझे प्रिय हैं" यहाँ पूरा भक्तियोग अध्ययन करने से निश्चित रूप से समझ में आता है कि भगवान का प्रिय होने के लिए आवश्यकता है, सुंदर चारित्रिक गुणों की, ये गुण न होने से वह भगवान् का प्रिय भक्त नहीं हो सकता है। भगवान् का प्रिय भक्त होने के लिए जिस-जिस गुण की जरूरत है, वह गीता के १२/१३, १९ वें श्लोक में है।

"गीता में वर्णित है कि भगवान् अखण्ड और अनंत हैं, समस्त जगत में उन्हीं का विस्तार है (गीता ९/४) भगवान् को छोड़कर और कोई दूसरा पदार्थ है ही नहीं, धागे में मणिसमूह जैसे ग्रन्थित रहता है, वैसे ही यह समस्त और सृष्टि जीव भगवान् का ही अभिन्न अंश है, (गीता १५/७) वही भगवान् समस्त जीव के अंदर आत्मा रूप में विराजमान है। (गीता-१०/२०) भगवान् सब में समान है, उनके अन्दर किसी के प्रति अपना पराया का भेदभाव नहीं है। (गीता-९/२९)

ये सन्देश समस्त मानवजाति के लिए आत्मिक एकता का सन्देश है। "गीता" में भगवान् एक अद्भुत करुणाभरा संवाद लेकर आये है ।ये करुणा है सृष्टि के समस्त पापी-तापी वंच्चित मनुष्य के लिए।

अपिचेत्सुदुराचारो .....न मे भक्तः प्रणश्यति।

(गीता ९/३०, ३१)

अतिशय दुराचारी व्यक्ति भी अगर अनन्य चित्त से मेरा भजन करता है तो तुम उसे साधु समझना क्योंकि सम्यक् रूप से उसका भजन श्रेष्ठ शुभ है क्योंकि मेरी शरण में आने से बहुत शीघ्र वह धर्मात्मा हो जाता है। तुम प्रतिज्ञा करके कह सकते हो कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता है। निम्नलिखित श्लोक में भगवान् की करुणा समस्त जातियों व धर्मों के लिए बरस रही है।

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ..... यान्ति परां गतिम् ।।

(गीताजी ९/३२)

हे पार्थ ! जो निकृष्ट जाति में जन्म लेता है, (यहाँ निकृष्ट जाति का अर्थ है, जिस जाति में शिक्षा, ज्ञान, सभ्यता का कोई प्रकाश नहीं, ऐसे कुल में जन्म, यानि बहुत ही पिछड़ा वर्ग, क्योंकि गीता में जातिवाद गुण और कर्म के अनुसार विभाजित किया गया है, जन्म से नहीं) चाहे वो स्त्री, वैश्य, शूद्र क्यों न हो, मेरे आश्रय में रहने से वह भी परम गति को प्राप्त करता है ।परम करुणामय भगवान् समस्त जातियों व धर्मों तथा विश्वमानव के परममंगल साधन तथा परस्पर प्रेममय सौहार्द्र स्थापना के लिए गीता की अमृतमय वाणी श्रवण करा रहे हैं। बहुत जन्मार्जित सुकृति वाले मनुष्य यह गीतामृत पान करके कृतकृत्य हो जाते हैं।

श्रीभगवन्नाम-महिमा

(केवल कृपासाध्य है – भक्तितत्त्व)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'नाम-महिमा' (२०,२१/५/२०१०) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी माधुरीजी, मानमंदिर, बरसाना)

भगवन्नाम-महिमा का ज्ञान सबको नहीं है। गोस्वामी जी आगे की चौपाई में बताते हैं कि नाम की महिमा शिव, गणेश आदि जानते हैं। नाम प्रभाव जान सिव नीको। नाम की महिमा हम जैसे जीव नहीं जान सकते हैं। यदि जान जायें तो खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगेगा, संसार के भोग आदि तो बहुत आगे की बात है। इस सम्बन्ध में भक्तमाल में एक कथा है – एक बार नारदजी ने भगवान् से कहा कि आपके भक्त विलक्षण होते हैं, अनन्त हैं। मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। जैसे भगवान् अनंत हैं, उसी प्रकार उनके भक्त भी अनंत हैं और उनकी महिमा भी अनंत होती है। नारद जी स्वयं भगवान् हैं लेकिन जैसा कि नाम-महिमा के इसी प्रसंग में गोस्वामी जी ने कहा है -

रामु न सकहिं नाम गुन गाई।

(रामचरितमानस, बालकाण्ड - २६)

उसी प्रकार राम जी ने भरत जी से कहा था -

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता।
अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ३७)

जैसे भगवान् की महिमा अनंत है, वैसे ही भक्त की महिमा अनंत है और नाम की भी महिमा अनंत है। अगर भक्त की महिमा ही हमलोग जान जायें तो भगवान् मिल जायें। यदि नाम की महिमा जान जायें तो नाम या नामी 'भगवान्' मिल जायें। नाम की महिमा जान जायेंगे तो कभी नामापराध नहीं होगा और भक्त की महिमा जान जायेंगे तो भक्तापराध नहीं होगा। लेकिन इनकी महिमा को जीव नहीं जान सकता, जीव के सामर्थ्य में नहीं है कि वह भगवान्, भगवान के नाम और भगवान के भक्तों की महिमा जान जाए। जो आदमी कहता है कि हम जानते हैं, वह अज्ञानी है, समझ लेना चाहिए कि वह पूरा अज्ञानी है। हम जैसे लोग जो बक-बक करते हैं, तत्वज्ञ बनते हैं, बढ़-बढ़ के बातें बनाते हैं, तो हम लोग अज्ञानी हैं क्योंकि राम न सकहि नाम गुन गाई, नाम की महिमा को तो राम भी नहीं जान सकते फिर यदि कोई आदमी कहता है कि हम नाम की महिमा जानते हैं तो क्या वह भगवान् से बड़ा बन गया, हम जैसे मूर्ख लोग होते हैं जो अपने को तत्वज्ञ दिखाते हैं। यही एक ऐसा अहम् है, जो जीव समझ नहीं पाता और भगवान् से दूर हो जाता है। भक्त की महिमा का वर्णन करते हुए भगवान् रामचन्द्र जी ने भरत जी से कहा था - संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥ अर्थात् मैं भी उनके गुणों को नहीं गिन सकता हूँ। "मैं जानता हूँ" बस यही एक अज्ञान है और ये चोरी सबके मन में रहती है। बूढ़ा हो, जवान हो, विरक्त हो, साधु हो, सभी यही सोचते हैं कि हम जानते हैं। यही सूक्ष्म अहम् है, जो सबके मन में रहता है, वह चाहे उसको ऊपर से प्रकट करे, चाहे प्रकट न करे। अधिकतर लोग प्रकट कर देते हैं कि हम जानते हैं। इस बीमारी से हट जाना ही 'दैन्य' है। इसका प्रमाण देख लो - वेद से लेकर के महात्माओं की वाणियों तक सब जगह से प्रमाण दिया जायेगा क्योंकि ये बीमारी सब जगह है और इस बीमारी से सब ग्रसित हैं। १०८ मुख्य उपनिषदों में ईशावास्य उपनिषद सबसे पहला है,

यह मंत्र भाग में माना जाता है, उसमें मंत्र आता है – "यस्यामतम् तस्य मतम् " जो कहता है कि हम नहीं जानते हैं, वह जान गया। "मतम् यस्य न वेद स:।" जो कहता है 'मतम्' अर्थात् मैं जान गया, वह कुछ नहीं जाना, वह केवल अहंकारी है। "अविज्ञातं विजानताम्" जो कहता है कि मैं जानता हूँ, वह अविज्ञात है, समझ लो कि वह कुछ नहीं जानता। "विज्ञातं अविजानताम्।।" जो कहता है कि मैं नहीं जानता हूँ, तो समझ लो इसमें कुछ ईश्वर की कृपा का प्रकाश हो गया। अधिकतर लोग अहंकार के अंधकार में रह करके अपने को पंडित मान लेते हैं, ज्ञाता मान लेते हैं। ये बात श्रुतियों में कही गई है – **अविद्यायामंतरे वर्तमान:**

स्वयं धीरा: पंडितं मन्यमाना:।

अज्ञानी लोग स्वयं को धीर पंडित मानते हैं, जिससे चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते हैं और ऐसे लोग गुरु बन जाते हैं और कहते हैं कि हम बड़े तत्वज्ञाता हैं, भक्ति के ज्ञाता हैं, रस के ज्ञाता हैं, प्रेम के ज्ञाता हैं। खुद अंधे हैं और दूसरों को भी अंधा बना देते हैं, अहम् का दान कर देते हैं कि तुमको तत्वज्ञान हो गया, प्रेमज्ञान हो गया, भक्तिज्ञान हो गया, रस का ज्ञान हो गया और इस तरह लोगों को संकीर्णता, अहम् व अविद्या की कोठरी में बंद कर देते हैं। इसी तरह से पुराणों में कहा गया है, भागवत में ब्रह्माजी ने नारद जी से कहा कि भगवान् की महिमा को हम-तुम और शिव जी कैसे जान जायेंगे। उसकी महिमा को हम लोग जान ही नहीं सकते।

नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न
वामदेवः किमुतापरे सुराः।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्वदं
विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे।।

(श्रीमद्भागवत २/६/३६)

ब्रह्माजी बोले कि वह तो मूर्ख है जो कहता है कि हम भक्त, भगवान् और भक्तितत्त्व के ज्ञाता हैं। न मैं जानता हूँ और न मेरे पुत्र प्रजापति ही जान सकते हैं, शंकरजी भी नहीं जान सकते हैं फिर अन्य देवताओं की तो बात ही क्या है। उसकी माया से मोहित लोग कहा करते हैं कि हम ज्ञाता हैं, हम जानते हैं । सब लोग अपनी बुद्धि के अनुसार बोला करते हैं। ब्रह्माजी कहते हैं कि उस परमतत्त्व को जानना कठिन है। इसलिए जो कहता है कि मैं जानता हूँ, वह नहीं जानता है।

अब रामायण का उदाहरण देखो –

सोई जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

(रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १२७)

आपको कोई जान नहीं सकता है, आप जिसको जनाओगे केवल वही जानता है अन्यथा कोई जान ही नहीं सकता।

यह गुन साधन तें नहिं होई।
तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई।।

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड – २१)

भगवान् की कृपा से ही जीव उनको जान सकता है, किसी साधन के बल पर नहीं। क्रमशः

दो चीजें होती हैं - नेत्र और प्रकाश। यदि हमारे पास नेत्र हैं और प्रकाश नहीं है तो नेत्रों का कोई फायदा नहीं और यदि प्रकाश है पर नेत्र नहीं हैं तो प्रकाश का भी कोई फायदा नहीं। दोनों का लाभ परस्पर निर्भर है। संतो से हमें ये दोनों ही चीजें मिल जाती हैं इसीलिए संत भगवान् को बहुत प्रिय होते हैं। तीर्थ तो केवल शरीर के पाप ही धो सकते हैं परन्तु ऐसे संत मन के पापों को भी धो देते हैं। संत तो चलते-फिरते तीर्थ हैं |

-प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज (गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

धाम-महिमा

(नित्यधामदा 'अवतरितधाम')

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'धाम-महिमा' (५/१/२००४) से संग्रहीत
(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी चंद्रमुखीजीजी, मानमंदिर, बरसाना)

अत्रि मुनि ने भरत जी से कहा कि यह अनादि सिद्ध स्थल है। भरतजी ने कहा कि जब यह अनादि स्थल है तो इसको हम लोग जानते क्यों नहीं हैं ? कोई नहीं जानता है, रामजी भी नहीं जान रहे हैं, मैं भी नहीं जान रहा हूँ जबकि आप कह रहे हैं कि धाम अनादि है। अत्रि मुनि ने कहा कि समय के अनुसार लोग धाम की महिमा भूल जाते हैं, धाम की महिमा का लोप हो जाता है, इसीलिए किसी को इसका ज्ञान नहीं है। जब लीलादृष्टि से भगवान् को ही ज्ञान नहीं है तो किसी और को क्या होगा ?

(धाम की महिमा का ज्ञान सत्संग से ही होता है।)

अत्रि मुनि ने भरत जी से कहा कि इस जल को इस कूप में रखो और इसका नाम भरत कूप रखा जायेगा।

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा।
अति पावन तीरथ जल जोगा॥

अत्रिजी ने रामजी को धाम की अमित महिमा बताई।

जब प्रलय था, संसार में चारों ओर जल ही जल था तो भगवान् वाराह रूप से पृथ्वी का उद्धार करने गये तो वहां संवाद हुआ है, पृथ्वी ने भगवान् से पूछा कि आप मुझे कहाँ ले चल रहे हैं और कहाँ रखेंगे क्योंकि चारों ओर जल ही जल है। भगवान् ने कहा कि जहाँ वृक्ष दिखायी पड़ेंगे, वहीं तुमको रख दूँगा। वह आगे चले तो वहाँ वृक्ष दिखायी पड़े। पृथ्वी ने पूछा कि यह क्या है तो भगवान् बोले कि यह मेरा ब्रज है। पृथ्वी ने कहा कि यहाँ मैं तो नहीं हूँ, फिर मेरे बिना ये पेड़-पौधे कहाँ से आ गये

प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी।
होइहहिं बिमल करम मन बानी॥
कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – ३१०)

अत्रिजी ने राम जी से कहा कि इस कूप का ऐसा प्रभाव है कि जो भी जीव इस कूप में स्नान करेगा तो वह मन, वाणी, कर्म से पवित्र हो जाएगा। तब राम जी को उसकी महिमा का पता पड़ा। इसका मतलब यह हुआ कि नित्य धाम का अवतार जब भी होगा, यहीं होगा। यह सब बातें जब स्पष्ट समझ में आ जाती हैं तब धाम में आस्था होती है, नहीं तो धाम में आस्था नहीं होती और फिर तो आदमी कहता कि हमने तो जहाँ सोच लिया वहीं वृन्दावन है, जहाँ हमारे मन ने सोच लिया वहीं ब्रज है, ऐसी-ऐसी बातें लोग कहते हैं; ये सब आस्थाहीनता की बातें हैं। आस्था नहीं है इसलिए वे ऐसी बातें कहते हैं।

? तो वाराह भगवान् ने कहा कि यह मेरा नित्य धाम है, इसका प्रलय आदि में भी नाश नहीं होता।

हरिराम व्यासजी ने ब्रजभूमि के बारे में कहा है -

फणि पर रवितर नहिं विराट महँ,
नहिं संध्या नहिं प्रात।

दिखाई पड़ता है कि ब्रजभूमि शेषनाग के फ़न पर स्थित है, पृथ्वी पर है लेकिन यह न तो सूर्य के नीचे है और न भगवान् के विराट स्वरूप में है, इसके वास्तविक स्वरूप व महिमा को हर व्यक्ति नहीं जानता है। यह सबसे बड़ा प्रमाण है कि प्रलय के समय भी ब्रजधाम का नाश नहीं

होता है। इसलिए नित्य धाम का अवतार जब भी होता है, यहीं होता है, इधर-उधर नहीं हो सकता, ये इसकी महिमा है । इसीलिए रामायण में कहा गया है –

मज्जहिं सज्जन बृंद बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुन्दर स्याम सरीर॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – ३४)

दरस परस मज्जन अरु पाना।
हरइ पाप कह बेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति।
कहि न सकइ सारदा बिमलमति॥
राम धामदा पुरी सुहावनि।
लोक समस्त बिदित अति पावनि॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड –३५)

इस धाम के दर्शन और स्पर्श से पाप नष्ट होते हैं । सरस्वती भी इस धाम की महिमा नहीं कह सकतीं । यहाँ निष्ठा से रहने मात्र से भगवान् के नित्य धाम में मनुष्य पहुँच जायेंगे । अर्थात् राम धामदा 'नित्य धाम' और पुरी 'जहाँ भगवान् का अवतार होता है' दोनों में अभिन्नता इस चौपाई में दिखाई गई है । एक उदाहरण से समझें, मान लीजिए आपको बम्बई जाना है तो आप कैसे जायेंगे । रेलगाड़ी से जाना है तो मथुरा स्टेशन जाना पड़ेगा । यह एक व्यवस्था है कि आप स्टेशन पर जायेंगे, रेल पर बैठेंगे तब वह आपको अपनी मंजिल तक पहुँचाएगी । व्यवस्था के अनुसार चलने से ही गंतव्य की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार उपासना की भी एक व्यवस्था है । वह यही है कि 'राम धामदा पुरी सुहावनि ।' भगवान् के नित्यधाम को भेजने वाली यह पुरी ही है, उधर अवध (अयोध्या) पुरी है, इधर ब्रजभूमि (मधुपुरी) है । यहाँ निष्ठा से रहने से ही नित्य धाम की प्राप्ति हो जाती है । ये सब बातें तर्क से नहीं समझी जा सकतीं । अब कोई बहस करे तो उसका कोई उत्तर नहीं है । आदमी प्रश्न कर सकता है कि रामायण में 'राम धामदा पुरी सुहावनि' क्यों कहा, यह पुरी ही राम के धाम में क्यों भेजेगी । हम तो ये कहते हैं कि 'राम धामदा बंग सुहावनि ।' बंगाल भी राम के नित्य धाम को भेज देगा । **'राम धामदा कलिंग सुहावनि ।'** कलिंग भी नित्य धाम पहुँचा देगा । इसमें जो चाहे अक्षर भिड़ा दो क्योंकि भगवान् तो सब जगह हैं । लेकिन उपासना की एक व्यवस्था है - अवधपुरी या ब्रज में कुछ ऐसे दिव्य परमाणु या दिव्य कृपा शक्ति है कि यहाँ निवास करने से सहज में ही नित्यधाम की प्राप्ति होती है । इसे तर्क से नहीं समझा जा सकता । इसीलिए हमको ये मान लेना पड़ता है कि **'राम धामदा पुरी सुहावनि ।'** यह पुरी बहुत शीघ्र भगवद्धाम को दे देती है । **'लोक समस्त विदित जग पावनि'** इसी भूमि में ही जीव-जगत को पवित्र करने की चिन्मय शक्ति है । क्रमशः

भगवान् कृपा करके संत रूपी रस्सी को जीव के पास अगर भेज दें तो उसका निश्चित कल्याण हो जाता है। जिनके पास बैठते ही भगवान् का यश सुनने को मिले, समझ लीजिये वे संत हैं। संत की तो वायु का स्पर्श भी यदि किसी जड़-चेतन को हो जाय तो वे भी भगवद्रति पा जाते हैं। उनके प्रभाव से सब कृष्णमय हो जाता है। ऐसे संत के पास रहने से, बिना कुछ किये ही सहज भक्ति आ जाती है |

-प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज (गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

श्रीराधासुधानिधि'

(रासाराधन-दर्शन से वासनाशून्य मन)

(श्रीबाबामहाराज के प्रवचन (२,३/ ५/१९९८) से संग्रहीत)

(संकलनकर्ता / लेखक –संतश्री ध्रुवदासजी भक्तमाली, मानमंदिर, बरसाना)

श्रीनरसीजी के संकीर्तनाराधन के कृष्णप्रेममय वातावरण से हुई पवित्र अंतःकरण वाली वे दोनों पेशेवर गायिकाएँ आपस में बात करने लगीं – देखो तो हम लोगों ने जीवन भर विषय-भोग सम्बन्धी गीत गाए और उन्हें गाकर नारकीय जन्तु बनी रहीं । हमारा गायन-वादन किसके लिए था ? पामर विषयी पुरुषों को रिझाने के लिए । अरे, ये दुनिया के भोगी पुरुष प्रसन्न होकर क्या देगें, केवल मल-मूत्र ही देंगे । गाँव में एक गँवारू श्लोक प्रचलित है –

"राजा प्रसन्नं गज हेमदानम् ।" राजा प्रसन्न होता है तो सोना-चाँदी देता है ।

"बनिया प्रसन्नं कौड़ी द्रव्य दानम् ।" सेठ जी प्रसन्न हो गए तो कहेंगे कि उधार ले जाओ (वस्तु-पदार्थ मिल जाएगा) ।

"तिरिया प्रसन्नं मल-मूत्र दानम् ।" कोई कामिनी प्रसन्न हो गयी अथवा कोई कामी प्रसन्न हो गया तो मल-मूत्र का दान कर देंगे और क्या करेंगे ?

"साधु प्रसन्नं वैकुण्ठ दानम् ।" यदि भगवान् का कोई भक्त प्रसन्न हो गया तो भगवान् का धाम – वैकुण्ठ प्रदान कर देगा । अतएव वहाँ वे वेश्या – गायिकाएँ आपस में चर्चा कर रही हैं कि हम लोगों ने जीवन भर विषयी पुरुषों को रिझाने के लिए गायन नृत्य किया, उससे एकमात्र हानि ही उठानी पड़ी और इन भगवद्भक्तों को देखो ये तो कृष्ण प्रेम में उन्मत होकर गा रहे हैं, नृत्य कर रहे हैं, कैसा विलक्षण सौभाग्य है इनका । नरसी के अद्भुत भगवत्प्रेम से प्रभावित होकर इन पतिताओं ने प्रातःकाल उनके पास जाकर उनके चरण पकड़ लिए और बोलीं – "महाराज ! हम लोग गायिकायें हैं, धन की आशा से हम सारे नगर में गीत गाकर घूम आयीं किन्तु वहाँ जाना व्यर्थ ही रहा । नरसीजी बोले – "अरे ! तुम लोग यहाँ कैसे धन की आशा से आ गयी क्योंकि मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है ।"

गायिकाएँ बोलीं – "महाराज ! आपके पास आने से पहले हमारे हृदय में धन की कामना थी किन्तु आपके इस दिव्य आश्रम में आने पर आपके यहाँ होने वाली रसमयी अराधना का दर्शन कर एक रात्रि में ही हमारी यह कलुषित कामना समाप्त हो गयी, अब तो महाराज ! आप कृपा करके हमें अपनी शरण में रख लीजिये ।"

विचार करके देखो, केवल एक रात्रि के ही भक्त-संग का कैसा अनिवर्चनीय चमत्कार होता है । जैसे अगणित जन्मों का अन्धकार दीपक के प्रकाश से दूर हो जाता है । दीपक ये नहीं कहता कि यह अन्धकार यहाँ कितने समय से है । इसी प्रकार भक्त के शरण में जाओ, भक्त ये नहीं कहेगा कि तुम कितने बड़े पतित हो । केवल उसकी शरण में जाओ और भगवान् के नाम का कीर्तन करो, झूमो-नाचो और कृष्ण नाम में मस्त हो जाओ, तुम्हारा जन्म-जन्मान्तरों का पापमय अन्धकार समाप्त हो जाएगा । जैसे महापुरुषों का यह गीत है –

सुखदाता गोविन्द नाम है, रसना जो तू गाये ।

यदि भगवान् का नाम गाओगे तो तुम्हारे एक जन्म की नहीं, सौ जन्म की नहीं, हजारों जन्म की, लाखों जन्मों की नहीं अपितु अगणित जन्मों से तुम्हारे हृदय में एकत्रित पाप वासनाओं की कालिमा नष्ट हो जायेगी । इसलिए भगवान् का गुणानुवाद करना सीखो ।

तो जड़ जीव जनम की तेरी, बिगड़ी हू बन जाये ॥
रसना जो तू गाये.....

जन्म-जन्म की बिगड़ी बन जायेगी। वही बात इन पतित गायिकाओं के साथ हुई। जीवन भर वे विषयी पुरुषों के समक्ष धन की आशा से नृत्य और गायन करती रहीं परन्तु नरसीजी जैसे महापुरुष के एक रात्रि के ही सत्संग से उनके जीवन का सम्पूर्ण ढाँचा ही परिवर्तित हो गया, वे उनके चरणों में नतमस्तक हो गयीं और बोलीं – हे नाथ ! हमें अपने चरणों के आश्रय में यहीं रख लीजिये। नरसी जी ने कहा – "मेरे पास धन तो नहीं है ।" गायिकायें बोलीं – "अब हमें संसार के नश्वर धन की आवश्यकता नहीं है, आपके पास भगवद्भक्ति का जो अविनाशी धन है, हमें तो यही चाहिए "। नरसीजी ने उन पर कृपा करके उन्हें अपनी कुटिया में स्थान दे दिया। अब तो वे भी नरसीजी के कीर्तन में नृत्य करने लगीं। इस प्रकार नरसीजी की दो पुत्रियाँ कुँवरबाई और रत्नाबाई तथा उनकी मामी, ये दोनों गायिकायें और एक चंचला नामक वेश्या – ये सभी नरसीजी के संकीर्तन-दल की सदस्या बनकर कृष्णप्रेम में उन्मत्त होकर लोकलाज का त्यागकर आराधना में आवेश के साथ नृत्यकर श्रीकृष्णभक्ति का रसपान करने लगीं। क्रमशः

"मनुष्य बनने के बाद भी अगर हम इस अन्धकार से न निकल पाये तो हम आत्महत्यारे हैं। अगर हम भोगों से निवृत्त नहीं हैं तो आत्महत्यारे हैं। हम करोड़ो-अरबों रुपया भी कमा लें पर अगर भोगों में लिप्त हैं तो इसका मतलब हम घोर अन्धकार में ही जा रहे हैं, जड़ योनी में जा रहे हैं। भोगों से ऊपर उठने के बाद भगवान् की करुणा की अनुभूति होती है; जिसको भक्तलोग गाते हैं, अनुभव करते हैं, जैसे ध्रुव जी ने किया।"

-प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज
(गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

संत-कृपा

"भगवान् कृपा करके संत रूपी रस्सी को जीव के पास अगर भेज दें तो उसका निश्चित कल्याण हो जाता है। जिनके पास बैठते ही भगवान् का यश सुनने को मिले, समझ लीजिये वे संत हैं। संत की तो वायु का स्पर्श भी यदि किसी जड़-चेतन को हो जाय तो वे भी भगवद्रति पा जाते हैं। उनके प्रभाव से सब कृष्णमय हो जाता है। ऐसे संत के पास रहने से, बिना कुछ किये ही सहज भक्ति आ जाती है।

वास्तव में यदि कोई महापुरुष मिल जाय तो उनकी सन्निधि में चाहे कोई भी साधन किया जाय, वही श्रेष्ठ है। संत के संग से ही धाम, नाम व सेवा का लाभ मिलेगा। इसलिए स्वतंत्र मत रहो, धाम में भी संतो के आश्रय में ही रहो। संतो के संग से श्रद्धा बढ़ती रहेगी और श्रद्धा ही सब पापों का नाश करती है। महापुरुषों के सानिध्य में किया गया धाम-वास, नाम-सेवन व इष्ट-सेवा अनन्त पुण्यदायी हो जायेगी।"

- प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज
(गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

गौ-महिमा

(सर्वपापनाशिनी है - 'गौमाता')

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'गौ-महिमा' (१५/०७/२०१२) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी पद्माक्षीजी, मानमंदिर, बरसाना)

च्यवन ऋषि ने कहा था कि गौमाता में ऐसी शक्ति है कि सारे देश के पाप को वह जला देगी यदि उसे निर्भय रखा गया तो। यज्ञ करो चाहे न करो, गाय की पूजा अवश्य करो क्योंकि स्वर्ग की सीढ़ी है - गाय। जब गाय की पूजा हो गई तो फिर किसी अन्य देवता की पूजा की आवश्यकता नहीं है। भगवान् ने गोवर्धन पूजा के समय इन्द्र की पूजा बंद करा दी थी। भगवान् ने कहा कि क्या जरूरत है इन्द्र की पूजा की ? पर्वत, गाय और ब्राह्मणों की पूजा करो। देवताओं की पूजा करने की कोई आवश्यकता नहीं है, बंद करो इन्द्र की पूजा; ये घोषणा भगवान् ने किया जबकि इन्द्र वैदिक देवता हैं, वेदों में इन्द्रसूक्त है। रामायण में भी कहा गया –

विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १९२)

भगवान् देवताओं के लिए अवतार लेते हैं लेकिन भगवान् ने कहा - नहीं, इन्द्र की पूजा की जरूरत नहीं है। केवल गोवर्धन, गाय और ब्राह्मण- इन तीनों की पूजा करो। गाय सर्वदेवमयी है , गाय के शरीर में समस्त देवता रहते हैं। गाय के रहते किसी देवता की पूजा की जरूरत नहीं है। अथर्ववेद में कहा गया है कि गाय के दोनों सींगो के मध्य ललाट में ब्रह्मा और ललाट के अग्र भाग में शिवजी का निवास है। दाहिने सींग के ऊपर नारायण और गाय के गुह्य स्थान में लक्ष्मी तथा गंगाजीगौमूत्र में रहती हैं। इसलिए च्यवन ऋषि ने कहा था कि गाय की सेवा राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ से भी श्रेष्ठ है।

आज का मानव, आज के ब्रजवासी गाय को भूल गये हैं। जबकि गौ-सेवा के आगे राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ भी कुछ नहीं हैं। गायें जहाँ रहती हैं, वह चाहे निकृष्ट देश है, गाय के चरणों की धूल मनुष्य के पापों को जला देती है। गाय के कारण निकृष्ट देश भी पवित्र हो जाते हैं। गाय के कारण मनुष्य के जितने भी रोग हैं, पाप हैं, ब्रह्महत्यादि महापाप हैं, ये सब दूर हो जाते हैं। यदि मनुष्य भाव से गौ-सेवा करता है तो वेद में कहा गया है कि गौ-भक्त को क्या नहीं मिल सकता ?

"न किञ्चित् दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत।"

महाभारत में भी लिखा है – **"गोषु भक्तश्च लभते यद् यद् इच्छति मानवः।"** गायों की सेवा से मनुष्य की समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं। इसीलिए गाय को कामधेनु कहा गया। भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा था कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो गौ-सेवा से प्राप्त न हो। धन और सुख- सम्पत्ति तो छोटी चीज है, गौ-सेवा से भगवान् तक की प्राप्ति हो जाती है। वल्लभ सम्प्रदाय के ग्रन्थ "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में उल्लेख है कि श्रीनाथजी एक गौ- भक्त के लिए लड्डू चुराकर रख लेते थे, उसके पीछे-पीछे घूमा करते थे। संसार की ऐसी कोई चीज नहीं है जो गौ-सेवा से न मिले लेकिन गौ-सेवा में भाव चाहिए। लोग गौशाला तो खोल लेते हैं लेकिन गायों को पशु समझते हैं। गाय को पशु नहीं, माता समझा जाये तो मातृवत् गौमाता समस्त कामनायें पूर्ण करती है। गाय कामधेनु है, वह अपनी व्यवस्था भी स्वयं कर लेती है। हमारे अंदर विश्वास होना चाहिए, यदि विश्वास नहीं तो वह एक पशु है। गौ-सेवा भाव से करनी चाहिए, उसी से (गौ-सेवा के कारण) अनेक संतों को,

ब्रजवासियों को भगवान् मिल गये। हमें गाय को पशु नहीं समझना चाहिए, गाय तो माता है। गाय की सेवा से सभी बीमारियाँ समाप्त हो जाती हैं। 'वैष्णववार्ताजी' में एक कथा आती है –

एक वैष्णव और उनकी स्त्री राजनगर (राजकोट) में रहते थे। वह ठाकुर जी की सेवा करते थे, इसके साथ ही भक्तों और गायों की भी सेवा करते थे। एक बार गुजरात में अकाल पड़ गया। खाने को अन्न नहीं रहा, घास भी नहीं रह गयी थी। एक दिन उस वैष्णव ने कहीं से गेहूँ खरीदा और घर में भूसी डाल दिया। उसी समय वहाँ एक दुबली-पतली गाय आयी और उस भूसी को खाने लगी। गाय बहुत भूखी थी इसलिए हटाने से भी नही हट रही थी। उस वैष्णव की स्त्री ने गाय को धक्का दे दिया तो गाय के प्राण छूट गये, उसकी मृत्यु हो गयी क्योंकि वह बहुत दिन से भूखी थी। वैष्णव को बहुत दुःख हुआ। उसने लोगों को इस बारे में बताया तो सबने कहा कि तुमको गौ- हत्या लग गयी है। तब उन दोनों स्त्री-पुरुष ने यह निश्चय करके कि हम भी मर जायेंगे, अन्न-जल ग्रहण करना छोड़ दिया। गौ-हत्या के कारण तो अनन्तकाल तक नरक जाना होता है। एक दिन गुरुदेव गोस्वामी गोकुलनाथ जी राजनगर पधारे। सभी वैष्णव उनका दर्शन करने गये। गोकुलनाथ जी को पता लगा कि वे वैष्णव स्त्री-पुरुष दर्शन करने नहीं आये तो उन्होंने पूछताछ की तो वैष्णवों ने कहा कि उन्हें गौहत्या लग गयी है इसलिए उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर रखा है। गोकुलनाथजी ने पूछा कि गौहत्या क्यों लग गयी ? तो लोगों ने बताया कि यहाँ अकाल पड़ गया था, वह वैष्णव किसी तरह गेहूँ खरीद कर लाये थे और एक गाय जो बहुत दिन से भूखी थी, वह वहाँ आकर गेहूँ खाने लगी। उन वैष्णव की स्त्री ने उस गाय को धक्का मारा तो वह गिर गयी और उसके प्राण छूट गये। उस दिन से उन वैष्णव और उनकी स्त्री ने अन्न-जल ग्रहण करना छोड़ दिया, वे कहते हैं कि अब हम भी जीवित रहकर क्या करेंगे? हमारी गौहत्या कैसे कटेगी ? इसलिए वे अपने को अपराधी समझते हैं और अपना मुँह आपको दिखाने नहीं आये। गोकुलनाथजी ने कहा कि उनको मेरे पास बुलाकर लाओ। सेवक लोग उन वैष्णव के पास पहुँचे और कहा कि आप को गुरुदेव बुला रहे हैं। वे वैष्णव गुरुदेव गोकुलनाथ जी के पास पहुँचे तो उन्होंने पूछा कि तुमने अन्न-जल क्यों छोड़ दिया ? वह वैष्णव बोले कि मुझे गौ-हत्या लग गयी है तब गोकुलनाथ जी ने कहा कि तुम घर जाकर अपने हाथ से भोजन बनाओ और किसी वैष्णव को अपने हाथ से भोजन पवाओ, इससे तुम्हारी गौहत्या का पाप नष्ट हो जाएगा। वैष्णव दंपत्ति ने कहा कि कोई भी भक्त हमारे हाथ का पानी भी नही पियेगा। गोकुलनाथ जी बोले – नहीं ! सब तुम्हारे हाथ का अन्न-जल ग्रहण करेंगे। तुमने अपनी गौ-हत्या को प्रगट कर दिया, यदि तुम कपट करते, इसको छिपाते तो यह पाप बढ़ जाता। इसको प्रकट करने से तुम्हारा पाप नष्ट हो गया। मनुष्य अगर अपने पाप को प्रकट कर दे तो वह पाप नष्ट हो जाता है। रामचरितमानस में वर्णन है –

जाने ते छीजहिं कछु पापी।
नास न पावहिं जन परितापी॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १२२)

मनुष्य जब अपने पाप को प्रकट कर देता है तब उसके समस्त पाप जल जाते हैं, छिपाने से पाप बढ़ता है। गोकुलनाथ जी की आज्ञा सुनकर सभी वैष्णव भक्त उन वैष्णव दंपत्ति के यहाँ भोजन करने गये, वहाँ सबने भोजन किया तो उन वैष्णव की गौहत्या दूर हो गयी। अतः कथनाशय है कि गौमाता के प्रति श्रद्धा व सेवाभाव से अनन्त जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं, यहाँ तक कि गौहत्या, ब्रह्महत्या जैसे महापापों का भी नाश हो जाता है।

क्रमशः

भक्त-चरित्र

(प्रियाजू के परम प्रेमीभक्त- "किशोरी अलीजी")

श्रीबाबामहाराज के एकादशी सत्संग (५/८/२००६) से संग्रहीत
(संकलनकर्त्री / लेखिका-भक्तमालिनी साध्वी गौरीजी, मानमंदिर, मानपुर, बरसाना

इस गह्वरवन में बड़े-बड़े श्रीजी के भक्त हुए और यह गह्वरवन स्वयं राधारानी ने अपने हाथों से बनाया है, ये उनका बड़ा प्यारा वन है। जिस वन को श्रीराधारानी ने स्वयं बनाया, उस वन के बारे में क्या कहा जाय ! यहाँ बड़े-बड़े रसिक संत महापुरुष हुये, जिनको श्रीजी ने दर्शन दिया, आज भी यहाँ वह साक्षात् खेलती हैं। सारे ब्रज में गह्वरवन की अलग छटा है, यह बड़ा प्यारा वन है, यहाँ कई सौ साल पहले अली-किशोरी जी नाम के भक्त हुए, जिनको राधारानी ने दर्शन दिया था। अली किशोरीजी साधु नहीं थे, गृहस्थ भी नहीं थे, इनका विवाह हो गया था, उनकी केवल स्त्री थी लेकिन स्त्री भी साधारण नहीं थी, वह उनसे भी बढ़ करके थी। भागवत में वर्णन आता है कि एकबार मथुरा के चौबे यज्ञ कर रहे थे, भगवान् ने उनके पास ग्वालबालों को भेजा, ग्वालबाल गए और बोले – "कृष्ण-बलराम को भूख लगी है, आप हमें उनके लिए कुछ भोजन दे दीजिए।" उन्होंने भोजन नहीं दिया परन्तु उनकी स्त्रियाँ भक्त थीं, पुरुष भक्त नहीं थे । वे ब्राह्मणपत्नियाँ स्वयं गयीं और कृष्ण-बलराम को भोजन कराया। श्यामसुन्दर ने उनसे कहा – "हे देवियो ! तुम लोग अब घर जाओ।" वे ब्राह्मणपत्नियाँ बोलीं – "अब हम घर जाकर क्या करेंगी, हमारे पति लोग हमें यहाँ आने से रोक रहे थे, हम उनसे लड़करके आयी हैं, वे हमको अब अपना नहीं मानेंगे।" भगवान् बोले – "सारा संसार अब तुमको अपना मानेगा।" भगवान् की आज्ञा से वे अपने सदन गयीं तो उनको देख करके उनके पति लोग बोले कि हमारा भाग्य खुल गया जो हमें तुम जैसी भक्त स्त्रियाँ मिलीं और इससे हमारे पुरखे भी तर गए।

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ।
भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥

(भागवत १०/२३ /४९)

अली-किशोरीजी की स्त्री भी ऐसी ही बड़ी भक्त थीं। अली-किशोरी जी बरसाने में इसीलिए आये थे कि हम यहाँ राधे-राधे रटेंगे, राधारानी हमें दर्शन देंगी, ऐसा निश्चय करके जब वह घर से चले तो इनकी स्त्री इनसे पहले चल पड़ीं, वह बोलीं कि तुम भजन करोगे तो क्या मुझको भजन करने का अधिकार नहीं है। अलिकिशोरीजी बोले कि राधारानी के यहाँ तो खुला दरबार है, कोई भी चला जाए, वह बड़ी दयालु हैं, उनके दरबार में कोई भी बुलावे वह दर्शन देती हैं, अब तो उनकी पत्नी भी चली आई और ये दोनों भक्त दंपत्ति गह्वरवन में भजन करने लगे। स्त्री-पुरुष का विवाह होता है लेकिन दोनों की मृत्यु तो साथ-साथ होती नहीं है, या तो स्त्री की मृत्यु पहले होती है अथवा पुरुष की मृत्यु आगे-पीछे हो जाती है। न कोई साथ आया, न कोई साथ जाएगा, सब अलग-अलग आते हैं, अलग-अलग जाते हैं। जो जीव जुड़वा पैदा होते हैं, उनमें भी मृत्यु के समय आगे-पीछे की थोड़ी देर होती है, साथ-साथ कोई नहीं मरता है। अलिकिशोरीजी की स्त्री का भी नाम किशोरी था, ये दोनों गह्वरवन में 'राधे-राधे' पुकारते हुए श्रीजी का भजन किया करते थे। होनहार की बात है कि एक दिन अलि किशोरीजी की स्त्री की मृत्यु हो गई। अलिकिशोरीजी उनके विरह में एक तरह से पागल हो गए, इसलिए नहीं कि वह उनकी पत्नी थी, पत्नी से उनका भोग का व्यवहार नहीं था, वह इसलिए रोये कि हम दोनों रात भर गाते थे, राधारानी को बुलाते थे, उनकी पत्नी भक्त थी, उसकी भक्ति के कारण वह हा किशोरी...! हा किशोरी....!! करके रोने लग गए। कथा बड़ी लम्बी है।

श्रीजी ने उनके रोने की आवाज सुनी क्योंकि वह इसी गह्वरवन में आज भी नित्य विहार करती हैं और जिसके ऊपर कृपा होती है, उसको एक न एक दिन अवश्य दर्शन देती हैं। उन्होंने श्यामसुन्दर से कहा कि 'हा किशोरी....! हा किशोरी.....!!' कहके इतने करुण स्वर में मुझे कौन बुला रहा है ? श्यामसुंदर बोले कि वह आपको नहीं बुला रहा है, उसकी स्त्री का नाम किशोरी था, उसकी मृत्यु हो गयी है तो वह उसकी याद में 'किशोरी-किशोरी' पुकार रहा है। लेकिन श्रीजी तो जानती थीं कि वह स्त्री के लिए नहीं विलाप कर रहा है, वह तो भक्ति के कारण रो रहा है। 'भगवान् का भक्त' भगवान् से बड़ा होता है। राधारानी ने श्यामसुन्दर से कुछ नहीं कहा और अपनी प्रिय सखी ललिता जी से कहा कि आप अब जाओ, किशोरी नाम तो मेरा ही है, वह पुरुष मेरा नाम लेकर मेरे गह्वर वन में रो रहा है तो आप जाकर उसके ऊपर कृपा करो। किशोरीजी की आज्ञा से ललिता जी आईं। अलिकिशोरीजी विरह में करुण कृन्दन करते हुए अचेत हो गये थे, ललिता जी ने अपना चरण इनके मस्तक पर रखा तो इनको होश आया, वह देखने लगे और ललिताजी से पूछा कि आप कौन हैं ? ललिता जी ने इनसे कहा – "तू क्यों रो रहा है ?" अलिकिशोरीजी बोले – "मैं तो राधारानी के लिए रो रहा हूँ कि किसी भी प्रकार मुझे उनका दर्शन हो जाए।" ललितजी बोलीं – "तू यहाँ से चला जा बरसाने में, जहाँ घूरे (कूड़ा फेंकने का स्थान) पर कूड़ा फेकते हैं लोग, वहाँ एक पागल बैठा है, उसको लोग पागल समझते हैं किन्तु वह पागल नहीं है, वह राधारानी का छिपा हुआ महान भक्त है, उसके चरण पकड़ ले, उसकी कृपा से तुझे श्रीजी मिल जाएँगी।" ललिताजी की आज्ञा से अलिकिशोरीजी बरसाना ग्राम गए। ललिताजी ने उन्हें जिन महात्मा के पास भेजा था, उनका नाम था वंशी अली, वह गुप्त महात्मा थे, छिपके पागल की तरह उस स्थान पर रहते थे, जहाँ ब्रजवासी कूड़ा फेंकते थे, वह कूड़े को उठा-उठाकर सिर पर रखते थे, उनका ऐसा भाव था कि यह बरसाने की रज है, यहाँ के घरों में श्रीजी खेलती हैं अतः यह कूड़ा नहीं है, यह तो श्रीजी की रज है, इसी में राधा खेलती हैं। अलिकिशोरीजी ने उन महात्मा के पास जाकर उनके चरण पकड़ लिये तो उन्होंने पागलपन का नाटक शुरू किया, हाथ-पाँव फेकने लगे, अनर्गल प्रलाप करने लगे। अलिकिशोरीजी ने कहा – "मैं आपको छोड़ नहीं सकता क्योंकि मैं आपकी महिमा जानता हूँ।" वंशी अलीजी ने पूछा कि तुझको मेरे पास किसने भेजा है तो अलिकिशोरीजी ने बताया कि मैं गह्वरवन में अचेत पड़ा था, उस समय ललिताजी ने आकर मुझे सचेत किया और उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है।" वंशी अलीजी समझ गये कि इसे ललिताजी ने मेरे पास भेजा है, तब तो उन्होंने किशोरीअलि के ऊपर कृपा किया और उनकी कृपा से उन्हें गह्वरवन में साक्षात् श्रीजी के दर्शन प्राप्त हुए। उन्हीं का एक पद है, वह अपने स्वरचित पद में राधारानी से कहते हैं – "हे राधे ! आप हमें कब अपना बनाएँगीं।"

श्री राधे मोहे कब अपनाओगी, कब अपनाओगी हे राधेरानी। श्री राधे मोहे .....हे राधे ! अपना रूप कब दिखाओगी? सुन्दर रूप अनूप आपनो कब दिखराओगी। श्री राधे मोहे.....

अपने चरणों में आप हमें कब बैठायेंगी अपना हाथ हमारे मस्तक पर रख करके।

निज कर कमल धारि मस्तक पे, चरणन् बिठलाओगी। श्री राधे मोहे कब.....

राधारानी ने उन्हें दर्शन दिया और अली किशोरी उनका नाम सच्चा किया, यह वही गह्वरवन है, जहाँ प्रत्येक माह की एकादशी को ब्रजवासी भक्त परिक्रमा लगाते हैं।

अलि किशोरी नाम सांचो करी, दासिन दुलरावोगी ।।

नित्य सत्संग

(परमार्थ-पथिक के लिए सावधानियाँ)

श्रीबाबामहाराज द्वारा प्रातःकालीन सत्संग (१४/१२/२००६) से संग्रहीत
संकलन/लेखन- डॉ. रामजीलाल शास्त्री 'बी. एस. सी., एम. ए. द्वय् (हिन्दी, संस्कृत),
बी.एड. आचार्य (साहित्य), पी. एच. डी., अध्यक्ष मान मन्दिर सेवा संसथान, बरसाना ।

तप तीन प्रकार का होता है। भगवान् ने गीता में बताया –

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।।

(गीता १७/१५)

तप जरूरी है, साधन जितना भी है, वह तप बोला जाता है। 'तप' माने उल्टा टँगना नहीं होता है। अपने इष्ट का नाम तो रटोगे ही रटोगे। साधन ही नहीं करोगे तो अनन्य कैसे बनोगे। 'अनन्य' अर्थात् इष्ट के अतिरिक्त कोई भी वस्तु हमारे मन, वचन और क्रिया में न आवे। आजकल अधिकतर अपने को अनन्य कहने वाले लोग स्वयं को इतना सीमित बना लेते हैं कि एक शब्द भी दूसरे सम्प्रदाय के ग्रन्थों का नहीं सुन सकते, जिससे वे अपने ही धर्म के आचरण में सफल नहीं हो पाते हैं। इसलिए किसी शब्द से चिढ़ने से काम नहीं चलता है। तप जरूरी है और शौच (पवित्रता) भी जरूरी है। पवित्रता नहीं रखोगे तो तुम्हारे मन में रस की जगह विष आयेगा, काम-क्रोधादि विकार आयेंगे, वासनायें आयेंगी। क्या पवित्रता के बिना कोई धर्म सिद्ध हो सकता है? वैदिक धर्म के अलावा समाज में लौकिक धर्म भी है। कोई भी आदमी चोर व बेईमान को अपने घर में घुसने नहीं देगा। अच्छे आदमी को लोग अपने घर में बुलाते हैं, बिठाते हैं। बदमाश-धोखेबाज आदमी से लोग दूर रहते हैं। इसीलिए पवित्रता भी आवश्यक है। पवित्रता का महत्व भी समझना चहिए। पवित्रता भी तीन प्रकार की होती है - मन की, वाणी की और शरीर की। अन्तःकरण की पवित्रता नहीं है तो तुम समाज में, लोक में ही स्थान प्राप्त नहीं कर सकते हो तो फिर परमार्थ में, अध्यात्म में मन की गन्दगी लेकर तुम कैसे सफल हो जाओगे। इसलिए पवित्रता के बिना तो लोकधर्म भी सिद्ध नहीं होता है, परमार्थ का धर्म तो बहुत आगे की बात है। इसीलिए तप के साथ शौच (पवित्रता) भी बहुत आवश्यक है। धर्म का तीसरा चरण है - दया। तुम्हारे व्यवहार में दया अथवा मृदुता नहीं है, कठोरता है तब भी तुम सफल नहीं होगे। महावाणीकार कहते हैं – **कबहुँ कठोर वचन नहिं भाखैं।**

सब जीवन पर करुणा राखें ।।

यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे सम्प्रदाय का नहीं है और तुम उससे कठोर वाणी बोलते हो तो तुम्हारा रस-मार्ग ही सिद्ध नहीं होगा। समझ की फरक है। अलगाववाद रखना अज्ञान है। कुछ शब्दों में हेर-फेर करके लोग अलगाव कर लेते हैं। **'सब जीवन पर करुणा राखें'** यही दया का स्वरूप है और जब यही बात भागवत के श्लोक में कही जाती है तो तुम उसको नहीं सुनना चाहते हो क्योंकि तुम संस्कृत से चिढ़ते हो, कहते हो कि अंगूर खट्टे हैं। इसीलिए धर्म के तीसरे चरण के अनुसार प्रत्येक प्राणी में भगवान् हैं। किसी से भी तुम कठोर व्यवहार करोगे तो तुम्हारा धर्म असिद्ध हो जायेगा, चाहे वह कोई भी धर्म है। धर्म का चौथा चरण है - सत्य। अपने गुरु के प्रति, अपने इष्ट के प्रति सच्चाई रखना तो अनिवार्य है, सत्य के बिना तो कोई भी धर्म सिद्ध नहीं होगा। झूठ, जालसाजी, फरेब से न तो कोई धर्म सिद्ध हुआ, न होगा। इसीलिए धर्म के चारों चरणों को समझना चाहिए क्योंकि इनके बिना कोई भी धर्म सिद्ध नहीं होगा। क्रमशः

भक्त-यशगान से भक्तापराध की निवृत्ति

श्रीबाबा महाराज द्वारा संध्याकालीन
'श्रीभक्तमालजी में भक्ति का श्रृंगार' (१७/२/२००८) से संग्रहीत सत्संग
संकलन/लेखन- संतश्री भामिनीशरणजी

'श्रीभक्तमाल' ग्रन्थ में भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। यह सभी जानते हैं कि श्रीनाभाजी महाराज ने भक्तमाल की रचना किया, ये ब्रह्माजी के अवतार हैं। द्वापर में कृष्ण-लीलाकाल में ब्रह्माजी ने ग्वालबालों और बछड़ों की चोरी किया था, इससे उन्हें भक्तापराध लग गया। भक्तापराध तो किसी को नहीं छोड़ता, चाहे कोई भी हो, अतएव उस समय अपने अपराध के परिमार्जन हेतु इन्होंने ब्रज-परिक्रमा किया था। उससे तात्कालिक अपराध निवृत्ति हुई थी किन्तु भक्तों के अपराध का पूर्णतया मार्जन करने के लिए ब्रह्माजीने कलियुग में नाभा रूप धारण करके भक्तमाल ग्रन्थ की रचना के माध्यम से भक्तों के भक्तमाल चरित्र गाये परन्तु भक्त यश हेतु उनके द्वारा निर्मित छप्पय बहुत संक्षिप्त थे। इसलिए उन छप्पयों की विस्तृत टीका की आवश्यकता थी। इन छप्पयों का विस्तार करने की आज्ञा स्वयं चैतन्य महाप्रभु जी ने प्रियादास जी महाराज को दिया। इस बात को प्रियादासजी ने स्वयं लिखा है –

महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मन हरन जू के चरण को ध्यान मेरे नाम मुख गाइयै।
ताही समय नाभा जू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइयै॥
कीजिये कवित्त बंद छन्द अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइयै।
जानों निजमति ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइयै॥

(श्रीप्रियादासजी कृत 'भक्तिरसबोधिनी' टीका, कवित्त-१)

भाव ये है कि एकबार प्रियादासजी श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चरण का ध्यान कर रहे थे। श्रीकृष्ण ही चैतन्य रूप से, भक्त रूप में प्रगट हुए; इनका नाम कृष्ण चैतन्य इसीलिए है और कलिपावनावतार इसीलिए कहा जाता है क्योंकि कलियुग में नाम-संकीर्तन का प्रचार इन्हीं के द्वारा विशेष रूप से हुआ। यों तो अनादिकाल से नाम की महिमा चल रही है किन्तु नाम-संकीर्तन के प्रचार-प्रसार की सम्यक् विधा महाप्रभु कृष्ण चैतन्य द्वारा हुई। इसीलिए संकीर्तन की प्रधानता अब भी गौड़ेश्वर सम्प्रदाय में अधिक है। जिस समय प्रियादासजी श्रीकृष्णचैतन्य के चरणों का ध्यान कर रहे थे, उसी समय नाभाजी ने इन्हें भक्तमाल की विस्तृत टीका लिखने की आज्ञा दी।

अब प्रश्न आता है कि क्या नाभा जी उस समय थे? नहीं, नाभा जी प्रियादासजीसे सौ वर्ष पहले पधार चुके थे अर्थात् प्रियादासजी के समय में नाभाजी इस जगत में नहीं थे और जब उस समय वह थे ही नहीं, फिर नाभाजी ने उन्हें आज्ञा कैसे दिया? इसका उत्तर ये है कि भगवान् के भक्त का आत्यन्तिक नाश नहीं होता है। भगवान् ने गीता में कहा - **कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। (गीता ९/३१)** हमारे भक्त का नाश नहीं होता, '**प्रतिजानीहि**' अर्थात् तू प्रतिज्ञा कर क्योंकि मैं भगवान् हूँ अतः मेरी प्रतिज्ञा भक्तों के कारण टूट भी जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं– जैसे- वृन्दावन के प्रसिद्ध रसिक संत हरिरामव्यासजी से बहुत वर्षों पूर्व कबीरदासजी महाराज धाम-गमन कर गए थे। एकबार कबीरदासजी के विषय में व्यासजी ने सोचा कि कबीरदास को ब्रज-रस की प्राप्ति नहीं हो पाई। ऐसा सोचते ही उनको

ध्यान में ठाकुर-श्रीजी के दर्शन होना बंद हो गए, भक्तापराध लग गया, तब गुरु-आज्ञा से उन्होंने कबीरदासजी की स्तुति किया तो कबीरदासजी ने दर्शन दिया, जिससे व्यासजी का मन संतृप्त हुआ, उपरान्त युगल छवि पुनः ध्यान में प्रकट हुई। तुलसीदासजी को भी कबीरदासजी ने दर्शन दिया था । राधावल्लभ सम्प्रदाय में सेवकजी को हरिवंश महाप्रभु ने नित्यधाम से आकर मंत्र-दीक्षा प्रदान की थी । महाराष्ट्र में ज्ञानदेवजी, नामदेवजी आदि भक्तों के भी उदाहरण हैं। नाभाजी ने प्रियादासजी को उस समय आज्ञा दी (जब वह ध्यान में थे) कि तुम हमारे ग्रन्थ की टीका करो (भक्तमाल का विस्तार करो), भक्तों का चरित्र गाओ। भक्तों का चरित्र गाने से भगवान् अधिक प्रसन्न होते हैं।

श्रीभगवान् के वचन –

मद्वन्दनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु वन्दनम् ।
मत्कीर्तनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु कीर्तनम् ॥
मत्सेवनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु सेवनम् ।
मद्भोजनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु भोजनम् ॥

(वराहपुराण)

हमारी वंदना करने से सौ गुना है भक्त की वंदना करो। हमारे कीर्तन से सौ गुना है भक्त का कीर्तन करो, हमारी सेवा से अधिक है हमारे भक्त की सेवा, हमको भोजन कराने से सौ गुना अच्छा है हमारे भक्तों को भोजन कराओ। इस तरह से भक्तों का चरित्र स्वयं भगवान् सुनते हैं और उन्होंने कहा विस्तार से भक्तमाल की टीका आप करिए और ऐसी टीका करो - **कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै ।** बड़ा सुन्दर हो 'जगमाहिं जगै' सारे संसार में उसका प्रकाश होवे। ऐसा कहकर के श्रीनाभाजी महाराज चुप हो गए । तब प्रियादासजी ने कहा कि महाराज ! जैसे शुकदेव जी थे, वह जन्म लेते ही वन में भाग गए । बारह वर्ष तक गर्भ में रहे माया के डर से और निकल ही नहीं रहे थे तो व्यास जी ने कहा कि तुम क्यों नहीं आते हो ? बोले - बाहर आते ही माया लगेगी। तो प्रभु ने कहा कि नहीं, तुम्हें माया व्याप्त नहीं होगी | तब शुकदेवजी गर्भ से निकलते ही जंगल की ओर चल दिये। पुत्र-मोह में व्यासजी पीछे-पीछे दौड़े - **पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुः...** बेटा-बेटा कहकर जा रहे थे और शुकदेवजी नग्न, मार्ग में देवांगनाएँ स्नान कर रही थीं, इनको देख करके उन्होंने कोई पर्दा नहीं किया, निर्वस्त्र स्नान करती रहीं, जब व्यासजी निकले पीछे-पीछे तो उनको देख करके वस्त्र पहन लिया तो व्यास जी ने कहा- (भागवत १/४/५) हमारा पुत्र तो युवक था। तुमने उससे लज्जा नहीं किया। हमें देखकर कपड़ा पहनती हो, ऐसा क्यों ? तो उन्होंने कहा कि आपके अन्दर तो स्त्री-पुरुष का भेद है। आपके पुत्र में तो भेद ही नहीं है, सर्वत्र ब्रह्मभाव है। तब व्यासजी ने कहा कि ठीक है, हमारा पुत्र ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गया, किन्तु ब्रह्मभाव से आगे भी कोई वस्तु है, वह है श्रीकृष्ण-रस। जब श्रीव्यासजी महाराज 'पुत्र-पुत्र' कहते जा रहे थे तो वृक्षों ने उत्तर दिया - शुकोऽहं.. शुकोऽहं... शुकोऽहं.... । तो उसी तरह से प्रियादासजी महाराज बोले कि जैसे शुकदेव ने वृक्षों में प्रवेश करके उनके पुत्रपन का उत्तर दिया था । ऐसे आप भी हमारे हृदय में प्रकाश करें क्योंकि भक्तों का चरित्र बहुत कठिन है, दुर्गम है। अर्थात् नाभाजी की आज्ञा मान लिया और उसके बाद प्रियादासजी ने कवित्तों में भक्तमाल ग्रन्थ की टीका किया। महात्मा लोग ऐसा कहते हैं कि अपनी कविता की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए किन्तु प्रियादासजी कह रहे हैं कि हमने अपने कवित्त की प्रशंसा इसलिए किया कि ये कविता मेरी नहीं है, ये तो नाभाजी की कविता है, वही प्रेरक हैं। 'मैं-मेरापन' छोड़ करके यदि आदमी चले तो जो कुछ करता है, वह प्रभु को समर्पित हो जाता है। (गीता ५/१०) (जब प्रियादासजी श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी का ध्यान कर रहे थे तो महाप्रभु जी की प्रेरणा से ही नाभाजी को स्फुर्ति हुई और उन्होंने प्रियादासजी को ग्रन्थ की टीका-रचना की आज्ञा दिया।)

|| आई छाक बुलाये श्याम ||

(मुख्य-पृष्ठ के पद का अर्थ)

भय शून्य, विश्वासयुक्त समवयस्कों की जो रति है, वही सख्य भाव है। नाना क्रीड़ाएँ करते हुए जब श्रांत हो गये बालक तो सबसे पहले लड्डू-लाड़ला मधुमंगल बोला – "कन्हैया ! मोदक की याद आ रही है। उदर धैर्य त्यागकर ऊधम मचा रहा है, कुछ कर भैया ....."

अंशु – "हाँ दादा ! मैं भी बहुत भूखा हूँ।"

भद्रसेन – 'भैया कन्हैया ! यदि थोड़ी देर छाक और नहीं आई तो मधुमंगल निश्चेष्ट-बेसुध होकर गिर पड़ेगा।"

(भद्रसेन के कहते ही नाटकिया मधुमंगल को गिरने में देर न लगी) उदर पर कर रखकर गिर पड़ा पेटू मधुमंगल। तब तक वात्सल्यमयी मैया यशोदा ने एक ग्वालिन के हाथ छाक भेज दी।

आई छाक बुलाये श्याम ||
यह सुन सखा सबे जुर आये सुबल सुबाहु श्रीदाम ||

सुबल, सुबाहू, श्री दाम.... आदि सब ग्वाल आ गये।

अरे ! ये क्या, मूर्च्छित मधुमंगल तो स्वयमेव उठ खड़ा हुआ।

"छाक की सुवास के सहारे खड़ा हो पाया हूँ मैं", मधुमंगल बोला।

(सब हँस पड़े)

कमल पत्र दोना पलास के सबके आगे धार परोसत जात ।

वन्यपात्र तो यही होते हैं।

शतपत्र कमल के दल को सम्मुख बिछा लिया, किसी ने कदली-पत्र को, किसी ने गिरिराज के स्निग्ध पत्थर ही पात्र बना लिये, किसी ने नारिकेल फल को ही पेय पदार्थ का पात्र बना लिया।

भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय सब प्रकार का भोजन है। पात्र भर जाते हैं, पेट भी भर जाता है किन्तु पदार्थ तो हर बार नये मालूम पड़ते हैं। पदार्थों का क्रम ही नहीं आता, इतने पदार्थ हैं।

ग्वाल मण्डली मध्य श्यामघन सब मिल रुचि कर खात ॥

कटि वस्त्र में वंशिका दबा ली, श्रृंग और वेत्र को कक्ष में दबा लिया, वाम कर-कमल के तल-देश एक कवल (ग्रास) रख लिया, उँगली के संधि-स्थान में द्राक्षा, अमरूद, नींबू नाना प्रकार के अचार रखे हुए, दक्षिण हस्त दूसरे का उच्छिष्ट लूटने के लिए रिक्त था। उस समय ये नन्दकुल चन्द्र नीलकांतमणि की भाँति उस सख्य समुदाय के मध्य सुशोभित हो रहा था।

ऐसी भूख मांझ यह भोजन पठाय
दिये कर यशोदा मात ।
'सूरस्याम' अब लों नहि जेंवत
ग्वालिन कर ते लै लै खात ॥

ऐसी भूख में यशोदा मैया ने भोजन भेज दिया, समीप सब कुछ है, पर ये गोपाल जब तक सखाओं का अवशिष्ट, उच्छिष्ट न मिल जाए तो भोजन ही आरम्भ नहीं करता।

जिस वृत्ति से श्री-हरि प्रसन्न होते हैं, वह है सेवाभाव। सेवा एक ऐसी चीज है कि मनुष्य-जीवन की सार्थकता भगवद्सेवा और भक्त-सेवा में ही निहित है।

- प.पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज
(गहवर वन तरंगिणी पुस्तक से संग्रहीत)

DHAAM-NISHTHA

Raviji Monga, New-Delhi

Brahmaji said- I performed a low act. I separated the cowherd boys away from Krishna's past times. I stole and kept them away from Krishna and brought the suffering of separation upon them. The repercussion of an offence towards even one devotee is unbearable and simply devours a jeeva. Here, I have commited offence against so many cowherd friends of Krishna. Bhrama ji confessed this himself. However, when he took shelter of Gopal Ji himself, he was advised that this sin can be only be washed away by Dham and none else. It is mentioned in Shrimad Bhagwatam – *Tri Parikramya.* The same has also been elaborated by Soordas ji. On being repeatedly persuaded by Bhrama ji, Krishna said

Shri Mukh Baani Kahett "vilamv av nek na laabahoo,

Braj Parikamma Karahoo Deh ko paap nasahoo"

O Bhrama ji, such offences can only be pardoned by Dham. You should go and perform perambulation of Braj and you shall be ridden of infinite sins.

I gave examples from Ramayana and now from Braj. While in Ramayana, it was the washer man and his mates, in Braj it was Bhrama ji- the creator of Universe himself. Bhrama ji did parikrama of Braj and thus received kripa. Similar was the case with Indra. Even he is in the list of offenders that I am talking of today. However, they were pardoned because of their devotional service to Braj Dham. Indra was a great sinner. Consider his order that all of Braj should be destroyed and not even a blade of grass be spared. The destruction of Braj should be complete.

Aho Shrimad Mahatmayam
Gopanaam Kaannauksaam
Tihare Braj mein Gayeenyaan bahut hai
Pee Pee doodh bahi patia

Observe the cowherds of Braj. They have turned fat because of the surplus milk available there. They have excessive number of cows.

Krishnam Martiyam upashrita
He chakroor dev helanam

It is not there fault. It is Krishna. These cowherds have taken shelter of Krishna and thus offended the demi Gods. And who be this Krishna

Vachalam balisham stabdh magyam pandit maaninam
Krishnam Marty mupashrity Gopa me chakrur priyam

Vachalam – He speaks a lot unneccassirily

balisham – Ignorant boy of seven only
stabdham - Arrogant
agyam – Uneducated
pandit maaninam – Considers himself to be a learned. These Brajwasis, by having taken shelter of such a personality have displayed disrespect to us Demi- Gods. They have depended on a mere mortal. I am the king of Demi- Gods and these people of Braj are mere earthen puppets. This point has to be noted. In the ego of being a personality of opulence or power, Indra failed to realize Dham. Any kind of disallusement of power or opulence becomes a barrier between a jeeva and Dham. Any kind of Ego, be it scriptural knowledge, renunciation or scholarly achievement is a barrier. I have several people visiting me all the time. Many people of the renounced order consider themselves to be superior. They claim to be rolling stones and hence do not stick to one place as I do. They come up with such convincing arguments that I turn speechless. Actually, all this is Ego. If they truly were renounced, they would not go to such lengths to praise themselves. The fact is that they are very attached to their Ego. This is not true renunciation. It is when you give up your Ego that you can claim to be truly renounced. It is when you remove your Ego and the sense of ownership. Destiman suhriday abhimatim tajyaptwan
Jaaya sutaadi gada mamta bimuncha
One should give up ones Ego and detach from the idea of ownership. One often thinks that to wander around in different places is being renounced. Rasiks have declared:
Shri Radha prashaad te basibo ban bhaavay
Yeh kumati pishaachni jaha taha bhatkaavay
The concept of wandering places that one considers renunciation is actually going against Bhakti. This is what usually happens. Many do consider this renunciation. Vyas ji condemns:
Bhatkat firat gaud gujrat One is wandering around lost and yet feel renounced.
Yeh kumati pishaachni jaha taha bhatkaavay.
A person whose buddhi is stuck in the false belief that he is a renounced personality shall never be able to obtain *Dham Nishtha*. True renunciation does not exist in such a heart. It is only when Shri RadheRani blesses…
Vrindavan Vrindavan kahoo re
Vrindavan ki kunjan ki chaayaa mein rahoo re
Bhatkat mat desh desh, Vesh kyoon lajaavey re And you think you are doing the right thing in conformity to the robes of a renounced person. NO. The robes of a renounced are taken up only to obtain exclusive devotion to the Lord.**Kunjan ke kone paryo, jugal kyo naa gave re** A lot of people tell me " O Maharaaj, if we do not go out of Braj, how shall we run our big ashram. So many qualified devotees dwell and sustain life in the ashram. Is it right to neglect them? ". For them it is has been said
Raakh biswaas jiya paalan karihey Shri Radhe
Bansi Ali Satya Satya poojiyay hai sabh saadha .

continue.....

मान मन्दिर की गतिविधियाँ

दाऊजी का हुरंगा

हर वर्ष की भांति फाल्गुन मॉस की द्वितीया तिथि (३ मार्च) को बलदेवग्राम (दाऊजी) में हुरंगा कार्यक्रम आयोजित किया गया, वहाँ के ब्रजवासी श्री बाबा महाराज से अत्यधिक प्रेम करते हैं अतः उनके विशेष प्रेमाग्रह के कारण श्री बाबा महाराज दाऊजी का हुरंगा देखने के लिए गये थे, उनके साथ मान मन्दिर के सभी साधु संत साध्वियाँ और दीदी जी गुरुकुल के छात्र एवं छात्राएँ भी गये थी | ब्रज में दाऊजी की होली को हुरंगा कहा जाता है | हुरंगा के अवसर पर वहाँ की गोपियाँ पुरुषों के वस्त्र फाड़कर उसी का कोढ़ा बनाकर उन्हें पीटती हैं | इस प्रकार की होली कृष्ण-बलदेव गोपियों के साथ खेला करते थे, उसी होली को आज भी परम्परानुसार इस ग्राम में विशेष उत्साह के साथ मनाया जाता है |

दाऊ जी का रासोत्सव

चैत्र पूर्णिमा के दिन बलराम जी ने ब्रजगोपिकायों के साथ रास किया था | आज भी इसी तिथि पर बलदेव ग्राम (दाऊजी) में दाऊजी का उत्सव मनाया जाता है | गत वर्ष यहाँ के ब्रजवासियों ने श्री बाबा महाराज को दाऊ जी के रासोत्सव कार्यक्रम हेतु आमन्त्रित किया था तो श्री बाबा महाराज के साथ ही मान मन्दिर की साध्वियाँ भी वहाँ गयीं थीं, वहाँ दाऊजी के मन्दिर में मान मन्दिर की इन साध्वियों ने १ घण्टे से अधिक समय तक नृत्य आराधना की थी जैसा कि मान मन्दिर के रसमंडप भवन में प्रतिदिन सांयकाल वह किया करती हैं | इस वर्ष चैत्र पूर्णिमा ३१ मार्च को है और वहाँ के ब्रजवासियों के निमन्त्रण पर पूज्य बाबा महाराज दाऊजी जायेंगे और इस बार पुनः दाऊ जी के मन्दिर प्रांगण में दाऊ जी के रासोत्सव की स्मृति में मान मन्दिर की दिव्य साध्वियाँ नृत्य आराधना प्रस्तुत करेंगी |

.....

***** || राधे किशोरी दया करो || *****

*हमसे दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो |

*सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो |

*विषम विषयविष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो |

*दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो |

*दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो |

*कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो |